श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

गौडीय सेनाधिपति श्रील श्रीजीवगोस्वामी प्रभुपाद विरचितः

अनर्पितचरींचिराद् श्लोकस्य टीका

श्रीवायुपुराणोक्तं च

श्रीगौराङ्गचन्द्रोदयः

हिन्दी अनुवाद सहित

गौडीयसम्प्रदायाचार्य
श्रीहरिदास शास्त्रीणा सम्पादितः

आधुनिक प्रतिलिपि संस्करण

पण्डित श्रीरघुनाथ दास शास्त्रीजी महाराज
व्याकरण,वेदान्तदर्शन,(श्रीधामवृन्दावन)

www.bhaktidarshan.org

Whatsapp +918218476676

❋ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ❋

वायुपुराणोक्तः

श्रीगौरांगचन्द्रोदयः

सटीकः "अनर्पितचरी" श्लोकश्च ॥

अर्थात्

(श्रीमद् रामनारायण गोस्वामिकृत प्रभाटीकया वायुपुराणोक्त श्रीगौराङ्गचन्द्रोदयाध्यायः; तथा श्रीमज्जीवगोस्वामिविरचित टीकया "अनर्पितचरी" श्लोकः)

श्रीवृन्दाबनधामवास्तव्येन
न्याय-वैशेषिकशास्त्रि, न्यायाचार्य, काव्य, व्याकरण,
सांख्य, मीमांसा वेदान्त, तर्क, तर्क, तर्क,
वैष्णवदर्शनतीर्थ, विद्यारत्नाद्युपाध्यलङ्कृतेन
श्रीहरिदासशास्त्रिणा सम्पादितम् ।

सद्ग्रन्थप्रकाशक :—

श्रीहरिदासशास्त्री

श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस, श्रीहरिदासनिवास,
कालीदह, वृन्दाबन, जिला—मथुरा ।
उत्तरप्रदेश

प्रकाशक * मुद्रक :—

श्रीहरिदासशास्त्री

श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस, श्रीहरिदासनिवास,

कालीदह, वृन्दाबन, जिला—मथुरा।

उत्तरप्रदेश

प्रकाशनतिथि :—

झूलन तृतीया

१२ श्रावण, ३-८-८१

श्रीगौराङ्गाब्द ४९५

प्रकाशन सहयोग मुद्रा

प्रथम संस्करण

१ वेदान्तदर्शनम् "भागवतभाष्योपेतम्" महर्षि श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासदेव प्रणीत, ब्रह्मसूत्रों के अकृत्रिम अर्थ स्वरूप श्रीमद्भागवतके पद्यों के द्वारा सूत्रार्थों का समन्वय इसमें मनोरम रूपमें विद्यमान है। २०.००

२ श्रीनृसिंह चतुर्दशी भक्ताह्लादकारी श्रीनृसिंहदेवकी महिमा, व्रतविधानात्मक अपूर्व ग्रन्थ। ०.५०

३ श्रीसाधनामृतचन्द्रिका गोवर्द्धन निवासी सिद्ध श्रीकृष्ण दास बाबा विरचित रागानुगीय वैष्णव पद्धति। ४.००

४ श्रीसाधनामृतचन्द्रिका (बङ्गला पयार) गोवर्द्धन निवासी सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबा के द्वारा सुललित छन्दोवद्ध ग्रन्थ। ४.५०

५ श्रीगौरगोविन्दार्चन पद्धति गोवर्द्धन निवासी सिद्ध श्रीकृष्णदासबाबा विरचित सपरिकर श्रीनन्दनन्दन श्रीभानुनन्दिनी के स्वरूप निर्णयात्मक ग्रन्थ। ३.५०

६ श्रीराधाकृष्णार्चन दीपिका श्रीजीवगोस्वामिपाद कृत श्रीराधासम्वलित श्रीकृष्ण पूजन प्रतिपादन का सर्वादि ग्रन्थ। २.००

७ श्रीगोविन्दलीलामृत (मूल, टीका, अनुवाद सह–१–४सर्ग) श्रीकृष्णदास कविराज कृत रागानुगीय स्मरणाङ्ग निर्वाहक ग्रन्थ। ५.५०

८ ऐश्वर्यकादम्बिनी (मूल अनुवाद) श्रीवलदेव विद्याभूषण कृत भागवतीय श्रीकृष्णलीलाका क्रमबद्ध ऐश्वर्य मण्डित वर्णन, श्रीवृषभानु महाराज, एवं भानुनन्दिनीका मनोरम वर्णन इसमें है। १.५०

९ संकल्प कल्पद्रुम (सटीक, सानुवाद) श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्तिपाद कृत स्वारसिकी उपासनाका प्रमुख ग्रन्थ। २.००

१० चतुःश्लोकी भाष्यम् (सानुवाद) श्रीनिवासाचार्यप्रभु कृत चतःश्लोकी भागवत की स्वारसिकी व्याख्या। ३.००

११ श्रीकृष्णभजनामृत (सानुवाद) श्रीनरहरिसरकार ठक्कुर कृत अपूर्व धर्मीय संविधानात्मक ग्रन्थ।

❋ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ❋

——❋❋——

❁ विज्ञप्तिः ❁

——❋❋——

विश्वहित व्रती होकर सत्त्वनिधि श्रीभगवान् जितने रूप में अवतीर्ण हुए हैं, उन में से असमोर्द्ध महिमान्वित स्वरूप ही श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु हैं, आपने कलिदोष निवारण के निमित्त जिस शिक्षा का प्रवर्त्तन किया था, वह ही शिक्षा के क्षेत्र में परिपूर्णान्तिम पद्धति है, मानव शिक्षा प्रधान प्राणी है, उसको उत्तम शिक्षा से शिक्षित करने से विश्व के समस्त प्राणी सुख एवं निर्भय से अवस्थान करने में समर्थ होंगे। यह शिक्षा ही है—अकृत्रिम ममत्व द्वारा प्रेरित होकर प्राणी मात्र के प्रति आनुकूल्य की भावना, दूसरे के सुख के निमित्त प्रवृत्ति को ही आनुकूल्य कहते हैं। इस से ही विश्ववासियों में उपास्य उपासक उपासना, व प्रमाण गत सम्पूर्ण एकता स्थापित हो सकती है।

श्रीचैतन्य देव के स्वरूप निर्णय प्रसङ्ग में श्रीचैतन्य चरितामृत कार ने कहा है–"न चैतन्यात् कृष्णात् परतत्त्वं परमिह" अर्थात् श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु ही परमतत्त्व हैं, अनन्तर अवदान के द्वारा महत्त्व निर्णय में प्रवृत्त होकर उन्होंने "अनर्पितचरी" श्लोक के द्वारा ही श्रीमन् महाप्रभु के अवतार कारण निर्णय प्रसङ्ग में जगत् के प्रति आशीर्वाद ज्ञापन भी किया है, सुतरां प्रस्तुत ग्रन्थ में श्रीमद् गौराङ्ग देव के अवतारवाद एवं तत् कारण निबद्ध होने से "श्रीगौराङ्गचन्द्रोदयः परमोपादेय प्रकरण निर्वाहक ग्रन्थ है। प्रस्तुत ग्रन्थ वायुपुराणोक्त श्रीगौराङ्गचन्दोदयः" नामक अध्याय विशेष है, अध्याय की अन्तिम पुष्पिका में उक्त है,––इति श्रीवायु

पुराणोक्तपारमहंस्य संहितायां वैयासिक्यां शेषकाण्डे गौराङ्गचन्द्रोदयोनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥

प्रस्तुत ग्रन्थ, अति उपादेय "प्रभा" नाम्नी टीका के साथ मुद्रित हुआ है। उक्त टीकाकार श्रीमद् गोपाल भट्टगोस्वामि चरण के अन्ववायी श्रीरामनारायण गोस्वामी है, ३५० वर्ष पूर्व में आपने इस टीका की रचना की है, आपने श्रीमद् भागवत के रासपञ्चाध्याय की "भाव भाव विभाविका" नाम्नी टीका रचना कर स्वीय अगाध पाण्डित्य एवं रचना नैपुण्य का परिचय प्रदान किया है,। आप श्रीराधारमण देव के सेवाइत श्रीपूजारि गोस्वामि प्रभु के अधस्तम श्रीदामोदर दास, तत् शिष्य श्रीहरिनाथ के शिष्य थे।

वायु पुराण की श्लोक संख्या २३०० हजार है, किन्तु वर्त्तमान प्रचलित संस्करण समूह में ११-१२ हाजार श्लोक हैं, अनुमान है कि इस के अधिकांश भाग लुप्त हैं, गवेषकगणों का भी यही मतहै, किन्तु ३५० वर्ष पूर्व में उक्त अंश उपलब्ध था। प्रस्तुत संस्करण ४५०, गौराङ्गाब्द में श्रीहरिदासदास द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ के अवलम्बन से मुद्रित हुआ।

इस ग्रन्थ के अन्तिम भाग में श्रीमज्जीव गोस्वामि विरचित टीका के सहित भविष्यपुराणोक्त।

अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्ति श्रियम् ॥
हरिः पुरट सुन्दर द्युति कदम्ब सन्दीपितः।
सदा हृदय कन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः॥

मुद्रित हुआ है, श्रीमन् महाप्रभु के कृतीपार्षद श्रीपाद रूप गोस्वामि महोदय ने श्रीविदग्धमाधव नाटक के 'नान्दी' रूप में इस श्लोक का विन्यास किया है, इस में श्रीमन् महाप्रभुका असमोर्द्ध अवदान अङ्कित है। प्रस्तुत टीका अतिमनोरम एवं सुख बोध्य है।

श्रीहरिदास शास्त्री

वायुपुराणोक्त-

श्रीगौरांगचन्द्रोदयः

श्रीराधारमणो जयतु।

श्रीशतानन्द उवाच—

ब्रूहि तात कृपासिन्धो भक्तानुग्रहकातर।
परित्राणाय लोकानां हेतुं कल्मष-चेतसां ॥१॥

श्रीमद् रामनारायण--गोस्वामि-विरचिता

प्रभा टीका-

श्रीश्रीशगणेश-सरस्वती-गुरु-द्विज-हरितत्त्वविद्भक्तिमद्भ्यो नमः। भगवद्रूपनिखिल-चराचरप्रपञ्चाय नमः॥

एकात्मानौ द्विधाभूतौ गौरश्यामल-रूपिणौ।
राधाकृष्णावहं वन्दे नानालीलौ मनोहरौ ॥१॥
नित्यलीलौ रमानाथौ प्रकटीकृतचित्तनू।
वृन्दाविपिन-सङ्केतकृतकेतौ भजे सदा ॥२॥
एकतत्त्वं द्विधाभूतं तच्चैक्यं समपद्यत।
गौराङ्गं कृष्णचैतन्यं वन्देहं कलितारणं ॥३॥
कृष्णदेहोपि गौरः स्याद् यद्भासेति श्रुतिरिता।
तदभेदेन गौराङ्गं कृष्णं वन्दे महाप्रभुम् ॥४॥
सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी।
इतीतिहास-सङ्गीतं गौराङ्गं सततं भजे ॥५॥
कृष्णवर्ण-त्विषाऽकृष्णं कृष्णवर्णनं-तत्परं।
गौराङ्गं वैष्णवाकारं भजे जातास्त्रपार्षदं ॥६॥
कृष्ण-कीर्त्या कलिं कृत्वा कलौ कृत्वा कृतं कृती।
कृतध्येयाकृतिः कृष्णः कृत्वङ्गोभाति तं नुमः ॥७॥

हरिनाथमहं वन्दे हरिनामप्रदं गुरुं ।
भवानीदास—शर्माणं गायत्रीव्रतदं भजे ॥८॥
बोधदं रामसिंहाख्यं विद्यानन्द—प्रदायकं ।
सदासुखमहं वन्दे सदासुखकरं गुरुम् ॥९॥
सुवेतरामराजानं प्रेमपात्रैकजन्मदं ।
तातं नत्वा यथाप्रज्ञं व्याख्येयं क्रियते मया ॥१०॥
राधामाधव—गौराङ्ग—गुरूणां करुणावलात् ।
गौराङ्गाख्यान—सद्व्याख्या प्रतन्यतेऽधुना मया ॥११॥
हृत् कृष्णाङ्कितगौराङ्गचन्द्रोदयमहो शुभं ।
तत् प्रमेयं विष्णुसख्या रागरागेन रञ्जिता ॥१२॥
कृष्णकीर्त्तिरिति ज्ञात्वा स्वाद्यतां वैष्णवै मुदा ।
कृष्णचौर्य्यादिवत् कीर्त्तौ कल्पतां तै र्न दूषणं ॥१३॥

श्रीवेदव्यासः सर्वजनोद्धारणाय तदुद्धार—वीजं प्रश्नमवतारयति—श्रीशतानन्द इति । कलिकल्मषघ्नकृष्णभक्ति-प्रवर्त्तक-श्रीगौराङ्गमाहात्म्यप्रसिद्धि-वीजभूत-प्रश्नेन शतं संख्यातानानन्दयतीति शतानन्दः । श्रिया वास्तव्या लक्ष्म्या हरि-भक्तिरूपया युक्तश्चासौ शतानन्दश्च श्रीशतानन्दः । सः उवाच । अनेन भगवद्-भक्तानां स्वयं भक्तिश्रिया पूर्णानामपि दीनजनोद्धरणायैव हरिकथालाप-प्रवृत्तिः । तदुक्तं शुकस्य भागवत-प्रवृत्ति-निरूपणे—'अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णुजन-प्रियः' (भागः १।७।११) इति, कृष्णकथाप्रश्नस्य च त्रिविधसकलजनपावनत्व-मपि भागवत एवविहितं । 'वासुदेव-कथा-प्रश्नः पुरुषां स्त्रीन् पुणाति हि ।

※ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ※

श्रीश्रीगौराङ्गचन्द्रोदयः

गदाधरं नमस्कृत्य गौरचन्द्र समन्वितम् ।
गौरचन्द्रोदयव्याख्यां करोम्यहं यथामति ॥

वायुपुराण प्रणेता—

श्रीवेदव्यास सकल जीवों का उद्धार करने के लिए उक्त उद्धार के बीज स्वरूप प्रश्न की अवतारणा कर रहें है, शतानन्द इत्यादि

वक्तारं प्रच्छकं श्रोतॄं स्तत्पादसलिलं यथा' इति (१०।१।१६) । शतानन्द-प्रश्नमेवाह—ब्रूहि तातेति । अत्र तात-शब्देन निरुपाधि-सौहृद-द्योतकेन यद् रहस्यमपि तत् पुत्र-सौहृदात्मह्यं कथनीयमिति ध्वनितं । ननु पुत्र ! त्वं भक्ति-श्रिया पूर्णोऽसि, अन्यार्थ-प्रश्ने तु तथाविध-सौहृदाभावात् कथं रहस्योद्-घाटनं ? तत्राह कृपासिन्धो इति । नहि सिन्धोः सलिल-व्यये क्षयशङ्का, न च तद्दाने पात्रापात्रविभागः, अत स्तव सर्वानुकम्पित्वाद् घटत एव रहस्यो-क्तिरित्यभिप्रायः । ननु सिन्धोरपि जनः स्वप्रयत्नेन जलमाहरति । नहि सिन्धुना, जनमुद्दिश्य स्वयं सलिलं दीयते । ये रहस्य-जिज्ञासव स्तेषां प्रश्ने वदिष्यामि नतु तव भक्त्या पूर्णस्य, तत्राह—भक्तेति । दीनानां संसारिणां भगवत्पथ्यप्रवृत्तावपि भक्तानामुत्तमःश्लोकानुयायिनां नारदादीनां स्वयमुद्यम्य भगवत्पथप्रवर्त्तकत्व—दर्शनात् त्वयापि तथैव रहस्योपदेशः कार्य्यः । तदुक्तं—'भगवन् भवतो यात्रा स्वस्तये सर्व-देहिनां । कृपणानां यथा पित्रोरुत्तमःश्लोक-वर्त्मनां । (११।२।४) विष्णो र्भूतानि लोकानां पावनाय चरन्ति हि' इति च । नन्वेवमपि किमिति त्वरया, नाधुना कलि-प्रवृत्ति, स्तत्प्रवृत्तौ पाप-दुःख-मज्जतो जनानुद्दिश्य तत्त्वरणोपायो वाच्यः, अन्यथा जलमदृष्ट्वा पाद-

---

शब्दोंसे । कलि कलुष नाशन कृष्णभक्ति प्रवर्त्तक श्रीगौराङ्ग की महिमा एवं प्रसिद्धि के बीजरूप प्रश्न करके असंख्य मानव को जो आनन्दित करते हैं, वह ही शतानन्द है । श्रीहरिभक्तिरूपा श्री, अर्थात् लक्ष्मी, अथवा शोभा—सम्पत्तियुक्त होनेके कारण ही आप शतानन्द प्रश्नकर्त्ता हैं । तात्पर्य यह है कि—भगवद् भक्तगण स्वयं भक्ति समृद्धि पूर्ण होने परभी दीन जनगण को उद्धार करने के लिए श्रीहरिकथा की आलोचना करते हैं । श्रीशुकदेव की भागवताध्ययन में प्रवृत्ति निर्णय के प्रसङ्गमें उक्त है कि—विष्णुजन प्रिय शुकदेव श्री कृष्णके महाख्यान का अध्ययन नित्य ही किये थे । कृष्ण विषयक प्रश्न से वक्ता, प्रष्ठा एवं श्रोतृबृन्द पवित्र होते हैं । इस विषय—भागवत के १०।१।१६ में लिखित है । प्रश्न का उट्टङ्कन कर रहें हैं, हे तात ! हे कृपासिन्धो ! हे भक्तानुग्रहकातर ! कलुषचित्तयुक्त व्यक्तियों के परित्राण का उपाय क्या है ? उसको आप कहें, तात

कञ्चुकोत्तारण-प्रसङ्गः। तत्राह–अनुग्रहकातर इति। परतापानुतप्तानामनुकम्पा-विवशानां सतां दुःखदर्शनावध्युपेक्षा नोचितेति भावः। वक्तव्यार्थमेव निर्द्दिशति-परित्राणायेति। लोकानां परितः सर्वत ऐहिकामुष्मिकतापत्रयाद् वाह्याभ्यन्तरशत्रुभ्यो रक्षणाय यो हेतु स्तं ब्रूहि। ननूक्तमेव सर्वत्र श्रुतिस्मृत्यादौ स्वधर्मानुष्ठानं। तत्राह कल्मष-चेतसामिति। नहि पापाभिभूतमनसां यथावत् स्वधर्मानुष्ठानं सम्भवतीति भावः। न च धर्मेण पापमपनुदतीति श्रुतेः स्वधर्मानुष्ठानेनैव कल्मषक्षय इति वाच्यं। चेतसः कल्मषानभिभवे यथावत् स्वधर्मानुष्ठानं,तदनुष्ठाने कल्मष-क्षय इत्यन्योन्याश्रयापत्तेः॥१

शब्द निष्कपट प्रियता का द्योतक है, सुतरां प्रश्न का उत्तर गोपनीय ही हो, तथापि आप पुत्रवात्सल्य से प्रेरित होकर मुझको अवश्य ही कहेंगे। यदि आप कहें कि–पुत्र ! तुम तो भक्तिसम्पन्न ही हो, तुमने जो प्रश्न किया है, वह तो दुसरे के लिए ही है, तव उसमें उस प्रकार सौहार्द्य प्रकटन की आवश्यकता नहीं है, अतः रहस्य का उद्घाटन क्यों करेंगे ? इसके उत्तर में कहते हैं, आप कृपासिन्धु हैं। सागर जलविन्दु क्षयसे हानि की आशङ्का नहीं करता है, दान करने के लिए सागर पात्रापात्रका भी विचार नहीं करता है, अतएव आप सर्वजन दयालु होने से रहस्य वार्त्ता को भी अविचार से ही कहेंगे। आच्छा, पुछता हूँ–लोक सागर के निकट जाकर नानाविध चेष्टासे जलाहरण करता है, सागर तो लोकविशेष के प्रति दृष्टि देकर तो जल दान नहीं करता है। इस लिए कहता हूँ–जो भी व्यक्ति रहस्य तत्त्वको जानने के लिए जिज्ञासा करेगा,उसको अवश्य ही कहूँगा,किन्तु तुम तो भक्ति रससे परिपूर्ण हो, तुम्हें नहीं कहेंगे। इसके उत्तर में कहते हैं–आप भक्तानुग्रह कातर हैं। दीन संसारी जनगण भगवत् पथबिमुख होने परभी, श्रीहरिके अनुगत श्रीनारदादि भागवत्‌गण स्वयं ही प्रयत्न कर उन्मार्गगामी जीवनिचय को भगवत् पन्था प्रदर्शन करके उसका प्रवर्त्तक वने हैं। आप भी उस प्रकार से ही अविचार से सवको रहस्य का उपदेश करसकते हैं। आच्छा ! यदि ऐसा ही हो तो, जल्दी से जल्दी कहने की आवश्यकता नहीं है। अभी तो कलियुगका प्रारम्भ

न तपश्च न चेज्या च न ध्यानं ज्ञानमव्ययम्।
न दानं सत्त्वसंयुक्तं कलौ न दीर्घजीवनम् ॥२॥

ननु तपसा कल्मषं अपनुदतीत्यादिवचनात्तपसा कल्मष-क्षये स्वधर्मेणैवोद्धार इति चेत्तत्राह–न तप इति। अयमाशयः–तपःशब्देनात्र 'स्ववर्णाश्रमधर्मेण तपसा हरितोषणा'–दित्यादिवचसा स्वधर्मरूपं वा, 'यस्य ज्ञानं परन्तप' इत्यादिना ज्ञानं वा, 'मनश्चेन्द्रियाणां च ऐकाग्र्यं परमं तप' इत्यादिभिः शमादि र्वा। रूढ्या कायक्लेशात्मको वा। कायक्लेशात्मकत्वे च पञ्चाग्न्यादि वा कृच्छ्र चान्द्रायणादिप्रायश्चित्त–रूपं वा। नाद्यं, तत्र परिहारस्योक्तत्वात्, न द्वितीयं, तस्याग्रे पृथगुपादानात्, न तृतीयं, तस्यापि ध्यानशब्देनात्र पृथक् निःक्षेपात्। चतुर्थे तु न प्रथमं, वानप्रस्थाश्रमस्य कलिधर्मेषु

नहीं हुआ है, कलियुग आनेसे ही पाप दुःखमें निमग्न जनगण को पाप तापसे परित्राण करने के लिए उपाय कहेंगे, अन्यथा जलको न देखकर ही पादत्राणको खोलने का प्रसङ्ग आ पड़ेगा। इसके उत्तर में कहते हैं। अनुग्रह कातर। दुसरे के दुःखसे दुःखी सहृदय साधुगण होते हैं, उनके लिए दुःख दर्शन काल तक दुःखी को उपेक्षा करना युक्तियुक्त नहीं होता है। सम्प्रति वक्तव्य विषय को कहते हैं,–लोक समूह के परित्राण के लिए, ऐहिक पारत्रिक तापत्रय से लोक समूह को मुक्त करने के लिए, वाह्य एवं आभ्यन्तरीय शत्रु समूह से रक्षा करने के लिए–जो उपाय है, उसे आप कहें। आहा ! श्रुतिस्मृति में सर्वत्र ही उक्त है कि–स्वधर्मानुष्ठान से सकल तापकी शान्ति होती है, इस आशङ्का का निराकरण करने के लिए कहते हैं–कलुषमयचित्तयुक्त व्यक्ति का मन पापसे अभिभूत होने पर उससे कभी भी यथायथ रूपसे स्वधर्मानुष्ठान नहीं होता है, और यह भी नहीं कहा जा सकता कि–धर्माचरण से पापविनष्ट होता है, श्रुति प्रमाणसे स्वधर्मानुष्ठान से ही कल्मषक्षय होता है, कारण चित्त, कल्मष से अनभिभूत होनेसे ही यथायथ स्वधर्मानुष्ठान होता है, एवं स्वधर्माचरण से ही कल्मषक्षय होता है, इस उक्तिसे अन्योन्याश्रयरूप दोष होता है॥१॥

निषेधात्तद्‌धर्माणां पञ्चाग्न्यादीनामपि कार्य्यभावेन दूरनिपातात्, नापि द्वितीयं,
कलौ शरीरसामर्थ्यभावाद् यथावत् कृच्छ्र चान्द्रायण–प्राजापत्यादेरनुष्ठाना-
शक्यत्वात्, कृतेपि यथाकथञ्चित् कल्मषचेतसां पुनः पाप-प्रवृत्तौ कुञ्जर-शौच-
त्वापत्तेः। तदुक्तं–'दृष्टश्रुताभ्यां यत् पापं जानन्नप्यात्मनो हितं। करोति
भूयो विवशः प्रायश्चित्तमथो कथं? (भागः १।६) क्वचिन्निवर्त्ततेऽभद्रात्
क्वचिच्चरति तत् पुनः। प्रायश्चित्तमथोऽपार्थं मन्ये कुञ्जरशौचवदिति
(६।१।१०) ननु 'ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यां न परं पापपुण्ययोः'। 'तरति ब्रह्म-
हत्यां तरति सर्वपाप्मानं योऽश्वमेधेन यजती'त्यादि वचनात् अश्वमेधादियागैः
सर्वकल्मषक्षय उद्धारश्चेति चेत्तत्राह–न चेज्याद्यै'ति। अयमभिप्रायः–कलौ
अग्न्याधान-निषेधात् साग्नियज्ञानां सम्भावनाया अप्यभावात्। द्रव्याद्यभावेन
कर्त्तुमशक्यत्वात्, सत्यपि द्रव्याद्यौ तच्छुद्ध्यभावाच्च विघ्नबाहुल्येन प्रत्य-
वायाद्याकुलत्वाच्च। न च साग्नियागासम्भवेऽपि निरग्निपञ्चमहायागैः सर्व-
पापक्षय इति वाच्यं। तेषां पञ्चसूना-पातकक्षय एवोपक्षीणत्वात्, स्वधर्मान्तः-

---

आशङ्का—तपस्या से कल्मषनाश होता है, इससे कहा जासकता
है कि तपश्चर्य्या द्वारा कल्मष क्षय होने के वाद स्वधर्माचरण से ही
उद्धार होगा, इसका निराकरण करने के लिए कहते हैं,–तपस्या से
कल्मषक्षय नहीं होता है। आशय यह है कि-यहाँ तपः शब्दसे
स्ववर्णाश्रम धर्मका याजनरूप तपस्यासे हरितोषण होता है,इसवाक्य
से स्वधर्माचरण का ही बोध होता है, अथवा जिसका ज्ञान ही परम
तपः है, इस वाक्य से ज्ञान का ही बोध होगा? शमादि का बोध
होता है? अथवा कायक्लेश का ही बोध होता है? यदि कायक्लेश
को तपः शब्दसे सूचित करते हैं,तव वह पञ्चाग्निरूप है, अथवा कृच्छ्र
चन्द्रायणादि रूप है? उसका निर्णय करना होगा, स्ववर्णाश्रमादि
रूप नहीं हो सकता है। कारण उसका परिहार करने का उपदेश
विद्यमान है। द्वितीय,–ज्ञान का ग्रहण नहीं हो सकता है, कारण—
उक्त श्लोक में ही उसका निषेध हुआ है। तृतीय,–शमादि का ग्रहण
भी नहीं होगा, कारण–ध्यान शब्दके द्वारा उसकी पृथक् उक्ति हुई
है। चतुर्थ पक्षका प्रथम–पञ्चाग्न्यादि रूप भी नहीं होगा, कारण–

पातित्वेन प्रयुक्तत्वाच्च। ननु 'धर्म्ममेघमिमं प्राहुः समाधिं योगवित्तमाः।
वर्षत्येष यतो धर्मामृतधाराः सहस्रशः' इत्यादि वचनात् ध्यान-परिपाक-लक्षण-
समाधिना सर्व्वपापक्षय-सम्भवात् ध्यानमेवानुष्ठेयमिति चेत्तत्राह—न ध्यान-
मिति। इदमत्र ज्ञेयं, मूढं क्षिप्तं ऐकाग्र्य निरोधश्चेति पञ्च मनोभूमयः।
तत्र पापै स्तमःप्रावल्ये निद्रा-प्रमादादि-ग्रस्तं मनो मूढ़, रजःप्रावल्ये वाह्य-
विषयाभिमुखं क्षिप्तं, तयोस्तु न ध्यानाधिकारोऽपि। यम-नियमासन-प्राणा-
याम-प्रत्याहारैः पापक्षये सत्त्व-प्रादुर्भावेन तमोरजसोरभिभवे कदाचित् कदाचित्
विषयेभ्यः परावृत्य तत्त्वाभिमुखं मनः क्षिप्ताद् विशिष्टत्वेन विक्षिप्तं, तत्र
धारणाधिकारः। पुनश्च धारणया समस्तपाप-निवृत्त्या प्रत्ययैकतानतया तत्त्वा-
भिमुखं मन एकाग्रं, तत्र ध्यानाधिकारः। ततो ध्यानपरिपाकेमनो निरोधा-
वस्थायां समाधिः। तत्र कल्मषचेतसामनधिगतयोगाङ्गानामधिकारपक्षप्रविष्ट
तृतीयभूमिकैवासंभाव्या, कुतस्तरां चतुर्थी कुतस्तमां पञ्चमी वा? अतः कलौ
ध्यानमपि दुःसाध्यमेव। ननूपनिषत्प्रमाण-विचारेण ज्ञानस्य सुसम्पादनीयत्वात्
'न च ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्
कुरुते तथा॥' 'क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।' 'नैवं विदि
पापं कर्म्म श्लिष्यति।' इत्यादिभिः सर्वपापक्षयहेतुत्वात्, 'तरति शोकमात्म-

---

कलियुगमें वानप्रस्थ आश्रम निषिद्ध है। एवं याजनकारी अधिकारी
व्यक्ति के अभावसे–धर्मसमूह विनष्ट होगए हैं। उसका द्वितीय कल्प
कृच्छ्रादि का ग्रहण भी नहीं हो सकता है। कारण–कलियुग में
शारीरिक शक्ति हीनता स्वाभाविक है, अतः चान्द्रायणादि व्रतानु-
ष्ठान भी असम्भव है, यदि सामान्य रूपसे अनुष्ठान भी सम्भव हो तो
कल्मषचित्तयुक्त वृत्तिवाले की पुनर्वार पापमें प्रवृत्ति होती है, अतएव
उक्तानुष्ठान हस्तिस्नान के समान प्रतीत होता है। अपर आशङ्का
यह है कि–शास्त्र में उक्त है,–ब्रह्महत्या से वढ़कर कोई पाप नहीं है,
और अश्वमेध यज्ञसे पुण्यात्मक कोई कर्मभी नहीं है। जो अश्वमेध
यज्ञ करता है, वह ब्रह्महत्या आदि समस्त पापों से मुक्त हो जाता है,
इत्यादि वचन प्रमाण से ज्ञात होता है कि अश्वमेधादि यज्ञानुष्ठान से
सर्वकल्मष का क्षय होता है, और बादमें उद्धार भी होता है। इसका

वित्, ब्रह्मविदाप्नोति परमि'त्यादिना संसार-तारक-परमात्मसुखप्रापकत्वात् ज्ञानमेव सम्पादनीयमिति चेत्तत्राह—ज्ञानमिति। इदमत्राकूतं—अत्रोपनिषद् विचारमात्रात् ज्ञानस्य सुसम्पादनीयत्वं वदता किं वाक्चातुर्य्यमात्रसंपादकज्ञानं विवक्षितं अपरोक्षं वा, नाद्य स्तस्याकिञ्चित्करत्वात्, 'सर्वे ब्रह्म विदिष्यन्ति संप्राप्ते हि कलौ युगे। नानुतिष्ठन्ति मैत्रेय ! शिश्नोदर-परायणाः ॥' अज्ञस्याल्प-प्रवुद्धस्य ब्रह्मैवास्मीति यो वदेत्। महानिरयजालेषु स तेन विनि-पातितः ॥' इत्यादिना प्रत्युत दोषहेतुत्वात्। द्वितीयं निराकर्त्तुं ज्ञानं विशिनष्टि—अव्ययमिति। तादृशज्ञानस्य स्वसंपादनीयत्वाभावात् 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति, यज्ञेन दानेन तपसा नाशकेन शान्तो दान्तस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्येत् (वृहदा-४।४।२२) इत्यादिना ज्ञानस्य स्वोत्पत्तौ सर्वसाधन-सापेक्षत्वाच्चतुष्टय-साधनसंपन्नस्यैव श्रवणाधिकारात्; अधिकाराभावे प्रोत्साहमात्रेण प्रवृत्तौ तु 'ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात् पापस्य कर्मण' इत्यादि-वचनात् कल्मष-चेतसामप्रतिवद्ध-ज्ञानानुदयात्। ननु दाने कायक्लेशबुद्धि-कौशलसाधनाद्यपेक्षा-भावात् पामरैरपि सुकरत्वात्तेनैव समुद्धार इति चेत्तत्राह—न दानमिति। इदमत्र विवेचनीयं-उद्धारकत्वेन वादिना

समाधान कहते हैं, 'ना, यागादिसे उद्धार नहीं होगा। अभिप्राय यह है कि—कलिकाल में अग्निका आधान (स्थापन,संस्कार) निषिद्ध होने से साग्नि यहाँ नहीं हो सकता है, द्रव्यादि का अभावसे यज्ञादि का अनुष्ठान भी असम्भव है, द्रव्यादि उपलब्ध होने परभी उसकी अशुद्धता निवन्धन वह यज्ञादि के लिए उपयुक्त नहीं होता है, सुतरां वहुतर विघ्न होनेसे भुरि प्रत्यवाय व्याप्त यज्ञादि कर्मका अनुष्ठान असमीचीन है। यह भी कहना सम्भव नहीं है, कि—यद्यपि साग्नि यज्ञ करना असम्भव ही है, तव जीवगण निरग्नि पञ्चमहा यज्ञके द्वारा (पाठ, होम, अतिथिसत्कार, तर्पण, बलि) अनुष्ठानकर सवपापों से मुक्त हो सकते हैं। कारण, उक्त पञ्चमहायज्ञ पञ्चसूना गृहस्थके लिए (चूल्हा, पेषणी शिल, उपस्कर, सूपआदि, कण्डनी, उदूखल, एवं जलका कलससे उत्पन्न पापों का नाशक है। एवं वह स्वधर्माचरण में परिगणित है।

संमतं दानं तामसं राजसं सात्त्विकं वा ? नाद्यद्वितीयौ, 'अदेशकाले च यद्दा-नमपात्रेभ्यश्च दीयते। असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतं ॥ यच्च प्रत्युपका-रार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः। दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतं ॥' इति भगवदुक्त-लक्षणयो स्तामस-राजसयो रुद्धारकत्वासम्भवात्। राजसस्य यथा

अन्य आशङ्का यहहै—योगवित्तमगण समाधिको धर्ममेध कहते हैं, कारण, उससे धर्मामृत की सहस्रधारा की बर्षा होती है। इस प्रमाण से ध्यान परिपाक लक्षण समाधि के द्वारा सर्वपाप क्षयकी सम्भावना होनेसे जीवगण ध्यानका ही अनुष्ठान करें। इसका निरसन करते हैं, ध्यान से भी पापक्षय नहीं होगा। ज्ञातव्य विषय यह है कि—मनकी पाँच भूमिका (अवस्था विशेष) है। (१) मूढ़, (२) क्षिप्त, (३)विक्षिप्त, (४) एकाग्र, (५) निरोध। १-पाप समूह द्वारा तमोगुणों के प्रावल्यसे निद्रा,प्रमादादि ग्रस्त मनको मूढ़कहते हैं। २-रजोगुणों की प्रवलतासे वाह्यविषयाभिनिवेश को क्षिप्त कहते हैं। यह दो अवस्था में ध्यान का अधिकार नहीं होता है। ३-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहारादि द्वारा पापक्षय होने से सत्त्व का प्रादुर्भाव होता है, उस समय रजोगुण तमोगुणका पराभव से कभी कभी विषय समूह से मन परावृत होकर तत्त्वाभिमुखी होताहै। यह अवस्था क्षिप्त अवस्था से कुछ विलक्षण है, अतः इसे विक्षिप्त कहते हैं। इस समय धारणा का अधिकार आता है। ४-धारणा के द्वारा सवपाप निवृत्त होने से यदि मन निश्चित रूपसे अथवा निश्चल रूपसे तत्त्वाभिमुखी होता है, तव उसको एकाग्र कहते हैं। इस भूमिका में ध्यान का अधिकार आता है। ५-तत् पश्चात् ध्यान का परिपाक से मनका निरोध ही समाधि है, कलिकलुषहतचित्त व्यक्तिगण, योगाङ्ग समूह की शिक्षा प्राप्त नहीं किये हैं, सुतरां योगमार्ग में उनसव के लिए अधिकार पक्षगत तृतीय भूमिका हि असम्भव है, अतः धारणा का अभाव से चतुर्थ भूमिका का ध्यान नहीं हो सकता, सुतरां पञ्चमी भूमिका की कथा तो महादुर्लभ ही होगी, अतः कलिकाल में ध्यान होना ही असम्भव है।

कथञ्चिद् यशआदिक्षुद्रफल-प्रयोजकत्वेऽपि तामसस्य प्रत्युत पापहेतुत्वात् । तृतीयं प्रत्याह–सत्त्वसंयुक्तमिति । 'दातव्यमिति यद् दानं दीयतेऽनुपकारिणे। देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं मतं ॥' इत्युक्तलक्षणस्य सत्त्वसंयुक्त-दानस्य कलौ कल्मषच्चेतसां फलप्रत्युपकाराद्यनुद्दिश्य यथोक्तसत्कारादिपूर्वक-प्रवृत्त्यनुपपत्तेः । प्रवृत्तौ च द्रव्यादिशुद्धेः सत्पात्रस्य चालाभात् कस्तु म-

अन्य प्रकार प्रश्न यह है–उपनिषदों का प्रामाण्य विचार करने पर ज्ञान सुख सम्पादनीय होता है। पृथिवी में ज्ञान के समान पवित्र विधायक अपर सामग्री नहीं है। ज्ञानाग्नि,–समस्त प्रारब्ध, सञ्चित, आगामी कर्मको भस्मसात् कर देती है। उन पर श्रीहरिका दर्शन से सकल कर्म विनष्ट होते हैं। इत्यादि बचन से ज्ञान को सर्वपापक्षय का हेतु कहा गया है। और भी "आत्मवित् शोकसे परित्राण प्राप्त होता है। ब्रह्मवित् परम ब्रह्मको प्राप्त करता है" इत्यादि वाक्य से संसार तारक–परमात्मसुख प्रापक होने से ज्ञान लाभ करना ही श्रेयस्कर है। इसके उत्तर में कहते हैं, ज्ञानसे भी पापक्षय नहीं होगा, तात्पर्य यह है कि–उपनिषद् वाक्य विचार से ज्ञान सम्पन्न होता है, इस प्रकार कथन का अभिप्राय क्या है–वाक्-चातुर्य्य सम्पादक ज्ञानप्राप्त करना ही विवक्षित है ? अथवा अपरोक्ष ज्ञानप्राप्त करना विवक्षित है ? प्रथम पक्ष व्यर्थता दोषदुष्ट होनेसे उससे पापक्षय होता ही नहीं, बढ़ता ही है, कलियुग में सवव्यक्ति शिश्नोदर परायण होंगे, ब्रह्मवित् नहीं होंगे। अतएव ब्रह्मज्ञान का अनुष्ठान भी वे लोक नहीं करेंगे। अज्ञ एवं अल्प बोधयुक्त व्यक्ति यदि कहे कि–"अहं ब्रह्मास्मि" "मैं ब्रह्म हूँ" तो उस वाक्यसे ही वह निरयगामी होता है। इस प्रकार वचन से उक्त प्रकार ज्ञान दोष युक्त ही होता है। यह तो रहा प्रथमकल्प, द्वितीय कल्प–अपरोक्ष ज्ञान है, उसका निराकरण के लिए विशेषण शब्द प्रयोग करते हैं,– "अव्यय" उक्त अपरोक्ष ज्ञान स्वतः नहीं होता है, उसके लिए प्रयत्न की आवश्यकता है। कारण उपनिषद् कहती है, "ब्रह्मनिष्ठ व्यक्तिगण–वेदानुशासन को मानकर ही उनपर ब्रह्म को जानने के

शक्यत्वात् । ननु भवतां व्याख्यानेनात्र न-कारा स्तपआदि साधन-प्रतिषेधकाः, किन्तु तद्दुष्करत्वावगमकाः प्रतिभान्ति, तथा सति 'अञ्जनस्य क्षयं दृष्ट्वा वल्मीकस्य च सञ्चयं । नित्यमेव हि कुर्य्याद्दानाध्ययनादिकी क्रिया ॥' इति न्यायात् स्वशक्तिमनतिक्रम्य स्वल्पं स्वल्पमपि प्रतिदिनं अनुष्ठितदानाध्ययना-द्युपलक्षित-पूर्वोक्त-साधनजातं महता कालेन सञ्चितं सदुद्धारकं स्यादेव,तत्राह–कलौ न दीर्घजीवनमिति । इदमत्र ध्येयं –यद्यपि श्रीमद्भागवतादिशास्त्रे

अभिलाषी होते हैं, तज्जन्य वे सब यज्ञ, दान, तपस्या, भोगतृष्णा राहित्य का अनुष्ठान करते हैं। शान्त, दान्त, तितिक्षु एवं समाधिस्थ होकर आत्मामें (अन्दर ही अन्दर) परमात्माका दर्शन करना होता है" इत्यादि। इससे विहित होता है कि–ज्ञान स्वयं प्रादुर्भूत होने परभी उसमें सर्वविध साधन की अपेक्षा है। चतुष्टय साधन, नित्या-नित्यवस्तुविवेकऐहिक पारलौकिक फलभोगके प्रतिविराग। शम–दमादि सम्पत्ति एवं मुमुक्षत्व सम्पन्न व्यक्ति का वेदादि श्रवण में अधिकार होता है। उक्त अधिकार न होनेपर केवल उत्साह मूलक वाक्यसे ही यदि किसी की ज्ञानप्राप्ति के लिए प्रवृत्ति होती है तो (पापकर्म का क्षय होने से ही जीवका सम्यक् ज्ञान होता है) इसवाक्य से कहना होगा कि–कल्मषहतचित्तयुक्त व्यक्ति का भी अवाधित (निश्चित–निःसन्देह) ज्ञानोदय नहीं होता है। सुतरां कलिकलुषहत जीवका उद्धार ज्ञान साधन से भी नहीं होता है। फिरसे प्रश्न होता है–दान में कायक्लेश, बुद्धि, कौशल, साधनादि की अपेक्षा नहीं है। वरञ्च पामरगण भी अनायास दानकार्य का अनुष्ठान कर सकेंगे। अतएव कहेंगे कि दानसे ही जीवोद्धार होगा। इसके उत्तरमें कहते हैं ना, दानसे भी जीवोद्धार नहीं होता है। विवेच्य विषय यह है कि–वादीके द्वारा स्वीकृत उद्धारक पदार्थ जो दान स्वरूप है, वह तामस, राजस अथवा सात्त्विक दान है ? तामस राजस दानसे जीवोद्धार नहीं होता है। अदेश, अकाल, अपात्र, असत्कृत,अवज्ञात दान ही तामस दान है। और प्रत्युपकार की आशासे जो दान होता है, अथवा फल लाभ की कामनासे जो दान होता है, वह राजस दान

आयुषः शतवर्षत्वं स्वीकृत्य वाल्यवार्द्धक्यनिशाद्यायुषो वैयर्थ्यदर्शनेन शेषस्याल्पत्वमुक्तं, तदप्यास्तां वालानां नीरुजां च मरणोपलम्भात्, एकदिनेप्येकश्वासमपि विश्वासानर्हत्वात् साधुक्तं न दीर्घजीवनमिति। तदप्युक्तं 'अरे वद हरे नाम क्षेमधाम क्षणे क्षणे। वहिः स हि सरति निःश्वासः विश्वासः कः प्रवर्त्तते" ॥२॥

है, श्रीभगवदुक्त इस लक्षण से ज्ञात होता है कि–तामस एवं राजस दान स्वल्प यशः प्रभृति क्षुद्रफल प्रापक होने परभी तामस दानसे तो पाप ही होता है। सात्त्विक दान को लक्ष्यकर कहते हैं सत्त्वसंयुक्त दान इत्यादि देना कर्त्तव्य है। इस वुद्धिसे प्रेरित होकर अनुपकारी व्यक्तिको सुदेश कालमें जो दान किया जाता है, वह सात्त्विक दान है। इस प्रकार लक्षणयुक्त सात्त्विक दान करना कलिकाल में कलमष युक्त चित्तवृत्तिवाले के लिए असम्भव ही होता है। कारण फल अथवा प्रत्युपकारादि की अपेक्षा को छोड़कर यथोक्त सत्कर्मादि में उन सबकी प्रवृत्ति होती ही नहीं। उनकी प्रवृत्ति यदि सात्त्विक दान करने के लिए हो भी जाय, तथापि द्रव्यादि की शुद्धि एवं सत्पात्रादि का अभाव से सात्त्विक दान होना असम्भव ही होता है। वादी की आपत्ति यह है कि–व्याख्या में 'न' कार के द्वारा समुदाय तपस्या समूह का निषेध नहीं होता है, किन्तु तपश्चर्य्यादि दुष्कर है, इसका सूचक है। यदि ऐसा ही हो तो, अञ्जन के क्षयको देखकर एवं वल्मीक के सञ्चय को देखकर सकल जीव नित्य ही दान अध्ययनका अनुष्ठान करे। इस नियमके अनुसार कहना होगा कि–यथाशक्ति अत्यल्प परिमाण में भी प्रतिदिन अनुष्ठित दानाध्ययनादि के द्वारा उपलक्षित सर्वविध साधन समूह अनेक दिनोंके वाद सञ्चित होकर जीवोद्धार करेगा ही। इस आपत्ति का निरसन हेतु कहते हैं–कलिकाल में मानव जीवन दीर्घकाल स्थायी नहीं है। चिन्ता का विषय यह है कि–यद्यपि श्रीभागवतादि शास्त्रमें कलिकाल के मानवों की आयु एकसो बर्ष लिखित है। तथापि वाल्य, वार्द्धक्य, निशा प्रभृति में आयुष्काल की व्यर्थता को देखकर अवशिष्ट जीवन

केनोपायेन निस्तारो भविष्यति कलौ युगे ॥३॥

नन्वेवं समस्तसाधनजालस्य निषेधे मा भवतु कल्मषचेतसां परित्राणं, त्वं तु तावद्भक्तिश्रिया पूर्णोऽसीति किं तच्चिन्तया? इति चेत्तदिदमसहमानः पुनः पृच्छति केनोपायेनेति। एवं पूर्वोक्तसाधनासम्भवात् अतोऽन्येन केनोपायेन कलौ युगे कल्मषचेतसां निस्तारो भविष्यति, तं ब्रूहि इति पूर्वेणैव सम्बन्धः। अयमभिप्रायः–नहि शतानन्दस्य मम स्वस्यैवैकस्य सुखेन सन्तोषो, न च सर्वज्ञस्य कृपासिन्धो भक्तस्यानुग्रह-कातरस्य च तव दीनजनोपेक्षौचित्यमिति हेतोरुपायो वाच्य एव। तदुक्तं दीनजनानुकम्पिना प्रह्लादेन (भाग:-७।९।४३) नैवोद्विजे पर-दुरत्यय-वैतरण्या स्त्वद्वीर्य्य गायन् महामृतमग्न-

---

को अल्प ही कहा गया है। अल्पता मानलेने परभी वालक, नीरोग व्यक्ति की मृत्यु को देखकर कहना पड़ेगा कि एकदिन एक स्वास का भी विश्वास नहीं है। इसलिए उत्तम ही कहागया है कि–कलिकालके मनुष्य की आयु अत्यल्प है, यह तो उक्त ही है, अरे! क्षण क्षणमें परम मङ्गलनिधान श्रीहरिनाम ग्रहण करो। यह साँस वाहर होकर फिरसे लौटेगा, विश्वास ही क्या है? ॥२॥

इस प्रकार भक्ति सम्पत्तिवान् असंख्य आनन्द दाता शतानन्द महाप्रश्न करनेपर उत्तर दाता की योग्यता उनके नामोल्लेख से सूचित करते हुये श्रीव्यासदेव बोले,–गौतम इत्यादि। श्रीभगवत् शोभा–उसका गायक श्रीगो, अर्थात् वेद, उसमें ऊत अनुस्यूत हुई है, मा–वुद्धि जिनकी–वह ही श्रीगौतम है। अर्थात् शब्दब्रह्मात्मक वेदवेत्ता हैं। वादी कहते हैं–पूर्वोक्त साधन निषिद्ध होने से, कलिहत जीव का परित्राण न हो, तुम तो भक्ति सम्पत्तिपूर्ण हो। तुम्हारी उस प्रकार चिन्तासे क्या प्रयोजन है? यह सुनकर शतानन्द बोले, जिससे कलिहत जीवका उद्धार होगा, आप उसको कहें। कारण–कलियुग में तप आदि का अनुष्ठान असम्भव हैं। अभिप्राय यह है कि–मेरा नाम, शतानन्द हैं, मैं निजानन्द में ही तृप्त नहीं हूँ। आप तो सर्वज्ञ कृपानिधि भक्तानुग्रह कातर हैं, दीनजन की उपेक्षा, आपको

श्रीगौतम उवाच—

साधु पृष्टं त्वया पुत्र ! गुह्याद् गुह्यतमं मम ।

चित्तः । शोचे ततो विमुखचेतस इन्द्रियार्थमाया-सुखाय भरमुद्वहतो विमूढ़ान्॥ प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्तिकामाः मौनं चरन्ति विजने न परमार्थनिष्ठः । नैतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्ष एको नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतो नु पश्ये ॥ इति ॥३॥

एवं भक्तिश्रिया पूर्णेन असंख्यातजनानन्दकेन महति प्रश्ने कृते तदुत्तरं वक्तु योग्यतां तन्नाम्नैव सूचयन्नाह-श्रीगौतम इति । श्रियं भगवतः शोभां गायतीति श्रीगो वेद स्तस्मिन्नोता मा प्रमारूपा बुद्धि र्यस्य स श्रीगौतमः; शब्दब्रह्मात्म-वेदपारग इत्यर्थः । तथा श्रियं लक्ष्मीरूपां जगदुदयस्थिति-संयमहेतुभूतां स्वां प्रकृतिं अधिष्ठानतया आधारतया स्वामित्वेन वा गच्छति प्राप्नोतीति श्रीगः, श्रियं स्वाह्लादिनीशक्तिं श्रीराधां रासादौ गायतीति वा श्रीगः सर्वेश्वरः सच्चिदानन्दविग्रहो रसिक-शिरोमणिः श्रीपुरुषोत्तम स्तस्मिन्नोता मा प्रमात्मिका धी र्यस्येति श्रीगौतमः परब्रह्मनिष्ठ इत्यर्थः । 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभि-गच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं' । 'तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः

शोभा नहीं देती है । प्रह्लाद महाराज तो परदु:ख कातर होकर श्रीभगवान् के निकट जीवजगत् के कल्याण के लिए प्रार्थना किए थे ॥३॥ अथवा श्रीलक्ष्मीरूपा जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, संहार-कारिणी निज प्रकृति, उसमें अधिष्ठान रूपमें, आधार रूपमें, स्वामि स्वरूप में गमन करते हैं, प्राप्त करते हैं, जो—वह ही श्रीग हैं । किम्वा श्री—निज आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा, रासादि में उनके नामगुणादि का गायक सर्वेश्वर सच्चिदानन्दतनु रसिकशिरोमणि श्रीपुरुषोत्तम ही श्रीग हैं । उनमें अनुस्यूत हुई है, प्रमात्मिका बुद्धि जिनकी, वह ही परब्रह्मनिष्ठ श्रीगौतम हैं । इस प्रकार शब्दब्रह्म, परब्रह्म निष्णात आचार्य लक्षणयुक्त श्रीगौतम प्रश्न का उत्तर देते हैं । हे पुत्र इत्यादि । आत्मज होनेसे ही परमस्नेह पात्र है, अतएव महागुह्यतम विषय भी उनके निकट प्रकाशित हो सकता है, पुं नामक नरकसे

समाहितमना भूत्वा शृणु तत् परमाद्भुतं ॥४॥

श्रेय उत्तमं । शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रय'मिति (११।३।२१) श्रुतिस्मृत्युक्ताचार्यलक्षणान्वित उवाच । तत्र शब्दब्रह्मानभिज्ञत्वे परबोध-नत्वासम्भवः, परब्रह्मानुभवाभावे 'शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात् परे यदि । श्रमस्तस्य श्रमफलः ह्यधेनुमिव रक्षतः ।' (११।११।१८) इत्यादि वचनैः व्यर्थकौशलः स्वयमज्ञात्वा कथमन्यं बोधयेदतोऽर्थद्वय-व्याख्यानं श्रुति-पुस्तकानुमतमिति मन्तव्यं हे पुत्रेति । आत्मजत्वेनातिस्नेहविषयत्वाद् गुह्याद् गुह्यतमप्रकाशन-योग्यता । पुन्नरकात् त्रातीति पुत्रः कलिजन-नरकत्राणाय संप्रवृत्तत्वात् सम्बोधनं—पुत्रेति । त्वया साधु पृष्टं समस्तान्यसाधनजालं निराकृत्य कलित्राण-प्रश्नं कृष्णकथांलक्ष्यैव, तथा च 'वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषां स्त्रीन् पुनाति हि । वक्तारं पृच्छकं श्रोतृं स्तत्पादसलिलं यथा—(भाः—१०।१।१६) इति समस्तजन-नरकत्राणहेतुत्वात् प्रश्नस्य साधुत्वं पृच्छकस्य नरक-त्रातृत्वं । किं पृष्टं तदेवाह—गुह्याद् गुह्यतमं निष्काम-कर्ममार्गं, कर्म-त्वेपि संसृतिबन्धाननुबन्धित्वेन विविदिषा-श्रुत्येकगम्यत्वेन शुद्धिद्वारा प्रबल-ज्ञानभक्त्यङ्गत्वेन शास्त्ररहस्यत्वात् गुह्यं, तदेवेश्वरार्पितं गुह्याद्गुह्यं,

जो उद्धार करता वह पुत्र शब्दसे कथित होता है। यहाँपर शतानन्द, कलिहत जनगण को नरक से उद्धार करने के लिए प्रवृत्त हुये हैं, इस लिए उनको "पुत्र" कहकर सम्बोधन किया गया है । तुमने उत्तम प्रश्न किया हैं । कारण अन्य सबसाधन को छोड़कर श्रीकृष्ण कथा को लक्ष्य करके ही कलित्राण विषयक प्रश्न को तुमने किया है, श्री-भागवत कहती हैं, "वासुदेव विषयक कथासम्बन्धीय प्रश्न,—वक्ता, प्रष्टा, श्रोतृवृन्दको पवित्र करता है। सुतरां सकल लोकों के कलि से उद्धारक होनेसे ही प्रश्न का उत्तमत्व, प्रश्नकर्त्ता का नरकत्राण कारित्व हुआ है । जिज्ञासा का विषय क्या है, उसको कहते हैं। गुह्यसे भी गुह्यतम है । निष्काम कर्ममार्ग—गुह्य हैं, कर्म होने परभी उससे संसार बन्ध नहीं होता है, विविदिषा—(जानने का आग्रह), एकमात्र श्रुतिके द्वारा ही गम्य होता है । एवं चित्तशुद्धिके द्वारा

असहायत्वेन विविधविघ्नाभिभवशङ्कापङ्काकुलात्तस्मात् सप्रबलसहायत्वेन सर्वविघ्नोपमर्दकत्वादसंपूर्त्तावपि स्वल्पस्यैव महद्भय-रक्षकत्वाच्च । तदुक्तं 'नेहाभिक्रम-नाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते। स्वल्पमप्यस्य धर्म्मस्य त्रायते महतो भयात् ।' तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद् भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः । त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया विनायकानीकप-मूर्द्धसु प्रभो' इत्यादि । ततोऽपि गुह्याद् गुह्यतरं ज्ञानं तदुपेयत्वात्, तत्स्वरूपनिष्ठत्वाच्च। ततोऽपि आयाससुखेन खादित्यालये दर्पणादिस्थदीप्तया प्रकाशद्वैगुण्यवत् अनावृतत्वात् स्वतः स्फुरितत्वेन प्रेमवृत्तौ प्रतिविम्बितत्वेन नानालीलातरङ्गोल्लसितत्वेन च बहुगुणापन्नतत्फलभूतस्वरूपानन्दप्रापकत्वाद् गुह्याद् गुह्यतमं भक्तिमार्गमित्यर्थः । तदप्युक्तं—'क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसां । अव्यक्ता हि गति र्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते । तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसार-सागरात् । भवामि न चिरात् पार्थ ! मय्यावेशितचेतसां । सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः । इष्टोऽसि मे दृढ़मति स्ततो वक्ष्यामि ते हितं । मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु । मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि

प्रवल ज्ञान एवं भक्तिका अङ्गरूप में निर्दिष्ट शास्त्र रहस्य होने से ही उसको गुह्य कहा जाता है, यह निष्काम कर्म ईश्वर में अर्पित होनेसे गुह्यसे भी गुह्य होता है। निष्काम कर्म असहाय होनेके कारण, अनेक प्रकार विघ्नोंसे अभिभूत होने की सम्भावना रहती है। किन्तु ईश्वरार्पित कर्म महाबलबान् सहायक प्राप्तकर सर्वविघ्ननाशन एवं असम्पूर्ण होने परभी यत् किञ्चित् अनुष्ठानसे ही महामहा विपत्ति से मानव को रक्षा करता है, इस लिए उसको गुह्यसे भी गुह्य कहा जाता है, इससे भी गुह्यसे गुह्यतर होता है—ज्ञान, कारण, कृष्णमें भगवता ज्ञान होनेसे ही भगवत् प्राप्ति होती है, इस प्रकार ज्ञान ही उनके स्वरूपनिष्ठ है, अथवा स्वरूप का अवबोधक है। इस ज्ञानसे भी गुह्यात् गुह्यतम ही भक्तिमार्ग है, कारण—यह भक्ति, अक्लेश साध्य है। सूर्यमन्दिरस्थ दर्पण जिस प्रकार सूर्य की दीप्तिसे द्विगुणित प्रकाश दर्पण का होता है। उस प्रकार भक्ति ज्ञानकर्मादिसे अनावृत होनेके कारण स्वतःप्रकाश है, प्रेमाकार वृत्तिमें प्रतिविम्बित

एतद् गुह्यतमं वाक्यं ब्रह्मा लोक–पितामहः ।
वैकुण्ठं नगरं गत्वा सेन्द्रै र्देवगणैः सह ।

मे ।। सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।। (गीता–१८) नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनं । कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणमित्यादि (भागः १।५।१२) अकारणं निष्काममित्यर्थः । अपारसंसार-समुद्रस्य वत्सपदवत्तारकत्वात् लक्ष्मीपतेरानन्दसिन्धोः 'तुलसीजलमात्रेण जलस्य चुलुकेन वा । विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः ।' 'विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः । प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः स भवति भागवत-प्रधान उक्तः ।' (११।२।५५) इत्यादिवचनै स्तुलसीदलजलमात्रेण विक्रय-हेतुत्वान्नित्यमुक्तापराजितस्वतन्त्रस्य भगवतो बद्धत्व–वशीकृतत्व–परतन्त्रत्वापादकत्वाच्च परमद्भुतं, तन्मम सकाशात् समाहितमनाः शृणु, भक्तिश्रिया संपन्नस्य शतानन्दस्य स्वाभाविक-समाहितमनस्तेऽपि सर्वसाधारणोऽयं श्रवण-विध्युपदेशः ।।४।।

तत्र भविष्यदाख्यानमाह–एतद् गुह्यतममिति । ब्रह्मा प्रजापतिपति र्यतो लोकपितामहः, सर्वलोक-जनकत्वात् तत्पितरो मरीच्यादय स्तेषामपि पितृत्वात्तथा स्वस्वप्रजाभिः सेन्द्रैः देवगणैः सह वैकुण्ठस्य ब्रह्माण्डान्तर्गतत्वेन

एवं नानाविध लीला तरङ्ग से उल्लसित होकर बहुगुण सम्पन्न होती है, सर्वसाधन का फलस्वरूप होने से ही भक्ति स्वरूपानन्द प्रापक है। ज्ञानमार्ग के साधकगण अधिक क्लेश प्राप्त करते हैं। किन्तु भक्तिमान् व्यक्तिगण के लिए भयकी सम्भावना ही नहीं है, क्लेश तो है ही नहीं, अपार संसार समुद्रसे भगवान् भक्तगण को वत्सपदवत् त्राण करते हैं। तुलसीदल एवं एकबिन्दु जलसे ही भगवान् भक्तके निकट आत्म विक्रय करते हैं। भगवान् नित्यमुक्त, अपराजेय एवं स्वतन्त्र होने परभी भक्तसे बद्धत्व, वश्यत्व, परतन्त्रत्व को स्वीकार करते हैं। सुतरां भक्तिमार्ग ही परम अद्भुत है। उसका वृत्तान्त मेरे पाससे सावधान होकर सुनो ।।४।।

वक्ता श्रीलोकनाथं वै करुणामय–विग्रहम् ॥५॥

प्रलयानभिभूतो भगवल्लोको विकुण्ठ स्तत्र भव स्तत्स्वामी वैकुण्ठो विष्णु स्तन्नगरं श्वेतद्वीपं 'न कर्मिण स्तां गतिमाप्नुवन्ती'त्यादिवचनादिन्द्रादि-देवानां विकुण्ठलोकगमनासम्भवात् गत्वा श्रीलोकनाथं श्रियो लक्ष्म्या लोकस्य विकुण्ठाख्यस्य समस्तलोकानां वा नाथं। करुणामयविग्रहं करुणया ब्रह्माण्डान्तः-प्रदेशे आविष्कृतचिदानन्द-विग्रहं एतत् पृष्टमेव वाक्यं गुह्यतममित्यत्रानर्पित-निष्कामकर्मणः सकामापेक्षया पूर्वोक्तरीत्या श्रेष्ठत्वेपि भगवदसम्बन्धित्वेन तस्य गुह्यत्वाविवक्षया प्रथम-गुह्यशब्दोपेक्षा, न तु वाक्यान्तरबोधनाय; एतच्छब्देन तस्यैव प्रत्यभिज्ञानात् । वक्ता वदिष्यतीति शतानन्द-प्रश्नाद् भविष्यत्कथा-सर्वज्ञतया श्रीगौतमो निर्दिशति, एवमुपक्रमे (५) वक्ता, उपसंहारे च गन्तार (६६) इति भावी प्रयोगदर्शनेन भावित्व-निश्चये मध्ये क्वचिद् भूतशब्दानां प्रयोगः कथासौन्दर्य्याय ॥५॥

भविष्यत् आख्यान को कहते हैं–लोक पितामह ब्रह्मा इन्द्रादि देवगण के साथ बैकुण्ठ नगर में जाकर करुणामय विग्रह श्रीलोकनाथ को इस गुह्यतम वाक्य को कहे थे : ब्रह्मा शब्दसे प्रजापतिको ही जानना होगा, कारण आप लोक पितामह हैं। सकल लोकोंके जनक (निर्माता) होनेसे लोकपिता शब्दसे मरीचि को समझना होगा। इन सबके पिता-आपलोकपितामह है। निज निज प्रजागण एवं इन्द्रादि देवगणके साथ ब्रह्माण्ड के बहिर्भूत प्रलयसे अनभिभूत भगवद्धाम को विकुण्ठ कहते हैं, उसका स्वामी बैकुण्ठ, अर्थात् विष्णु हैं, उनका नगर श्वेतद्वीप हैं, वहाँ वे सवगए। इन्द्रादि देवगण सर्वोपरिधाम बैकुण्ठ लोक को जा नहीं सकते हैं। अतः यहाँपर बैकुण्ठ नगर शब्द से श्वेतद्वीप को जानना होगा। लक्ष्मीपति, एवं बैकुण्ठ लोकके अधिपति, तथा अनन्त ब्रह्माण्ड के अधिपति होकर भी करुणाहेतु ब्रह्माण्डके मध्यमें जो चिदानन्द विग्रहधारण कर आविर्भूत होते हैं, उनके ही समीप में उपनीत हुए ॥५॥

श्रीशतानन्द उवाच—

कथं वै ब्रह्मणा तात पृष्टः श्रीपुरुषोत्तमः ।
कारणं तत्र वा किं वै कथ्यतां मुनिपुङ्गव ॥६॥

भविष्यत्कथोपदेशेन गुरुकरुणातिशयं दृष्ट्वा सोत्साहः पुनः सविभागं पृच्छति—कथमिति । हे तात हे मुनिपुङ्गव सर्वज्ञत्वेन भविष्यद्वक्तृत्वान्मुनिश्रेष्ठ ! ब्रह्मणा श्रीपुरुषोत्तमः कथं पृष्ट इति सर्वज्ञत्वेऽपि लोकोपकाराय प्रश्नप्रकार-प्रश्नः । किञ्च तत्र भगवत्सन्निधावतिप्रयासेन गत्वा ब्रह्मणः प्रश्ने किं वा कारणमिति कथ्यतां । अयमाशयः–'भजन्ति ये यथा देवान् देवा अपि तथैव तान् । छायेव कर्मसचिवाः साधवो दीनवत्सला' इति वचनात् अनुत्पन्नैः कलिजनैः भजनानुपपत्त्या देवकरुणा-विषयत्वासम्भवात् परमभागवत्वेन ब्रह्मणः प्रश्ने करुणैव कारणं, अन्यत् किमपि वा ? ॥६॥

श्रीशतानन्द.–भविष्यत् वार्त्तापूर्ण उपदेशके द्वारा श्रीगुरु गौतमके अतिशय कारुण्य का अनुभव कर उत्साह के साथ पुनर्वार प्रश्नको विभागकर कहते हैं, हे तात ! (सर्वज्ञता के कारण, भविष्यवाणी करने के लिए उद्यत देखकर) हे मुनिश्रेष्ठ ! ब्रह्माके द्वारा श्रीपुरुषोत्तम किस प्रकार जिज्ञासित हुये थे ? यद्यपि शतानन्द स्वयं सर्वज्ञ ही थे, तथापि लोकोपकार के निमित्त ब्रह्मा द्वारा जिज्ञासित प्रश्नके विषय में आपने जिज्ञासा की। द्वितीयतः–श्वेतद्वीप में श्रीभगवत् के समीप अनेक परिश्रम से जाकर इस प्रकार प्रश्न करने का कारण ही क्या है ? उसका वर्णन आपविस्तार पूर्वक करें। अभिप्राय यह है कि,–जो जो व्यक्ति जिस जिस भावसे देवगणका भजन करते हैं, उनका भजन भी देवगण छाया की भाँति अनुगत होकर करते हैं। इस कथन के अनुसार उस समय के समुत्पन्न जनगण के द्वारा देवताओं का भजन अनुष्ठित न होने से जनगण के प्रति देवगण की करुणा होना भी असम्भव है। सुतरां परम भागवत् होनेसे प्रश्न करने का कारण, क्या करुणा ही है ? अथवा अन्य कुछ है, विवरण का वर्णन आप अवश्य करें ॥६॥

श्रीगौतम उवाच—

शृणु पुत्र ! प्रयत्नेन कलौ कल्मष-संज्ञके ।
सर्वे पापरता लोका श्चण्डा मिथ्याविवादिनः ॥७॥
स्वाध्यायादिना रहिता देवतातिथि-वञ्चकाः ।

तत्कारणं सप्रस्तावमाह—शृण्विति । हे पुत्र ! शृणु । कल्मषसंज्ञके पापबाहुल्येन तदात्मके कलौ सर्वे जनाः प्रयत्नेन प्रयास-पूर्वकं पापरताः पापानुरागेणैव तत्त्यागाशक्ताः । चण्डा बहुकोपिनः । मिथ्याविवादिनः तत्त्वानिर्णयकत्वेन मिथ्या व्यर्थो यो विरुद्धो ब्रह्मराक्षसत्व-फलको जल्प-वितण्डात्मको वाद स्तत्कर्त्तारः । तदुक्तं-'गुरुं हुंकृत्य त्वंकृत्य विप्रं निर्जित्य वादतः । अरण्ये निर्जले देशे भवति ब्रह्मराक्षसः इति ।' मिथ्याभिवादिन इति पाठे तु मिथ्याभाषिण इत्यर्थः ॥७॥ स्वाध्यायो वेदपाठः स आदि र्यस्य गुरुसेवनविहित-व्रतादे स्तेन रहिता इति ब्रह्मचर्य्याश्रमधर्माभाव उक्तः । गृहस्थादिधर्मलोपोपलक्षणमाह—देवतातिथिवञ्चका इति । अग्निहोत्रादीज्यादान-विमुखाः । निषिद्धकर्म्मप्रवृत्तिमाहपरस्वलोलुपाः अधर्मेण परधनं हर्त्तुमिच्छन्तः । परदाराभिगामिनः, उपलक्षणमेतत् स्वभार्य्येतरागम्यागमनादि-निषिद्धमैथुनमात्रस्य, सर्वेषां दोषा-

प्रस्ताव के साथ प्रश्न का कारण को कहते हैं—हे पुत्र ? श्रवण करो । पाप वाहुल्य के कारण कल्मष नामक कलियुग में सकल जीव ही प्रयत्न के साथ पापानुष्ठान मैं रत होते हैं, अर्थात् पाप का त्याग करने में वे सब असमर्थ हैं । चण्ड (बहुक्रोधी) एवं मिथ्या विवादी वे सब होते हैं । अर्थात्—तत्त्व निर्णय में अक्षम होकर व्यर्थ जल्प वितण्डादि के द्वारा ब्रह्म राक्षस होते हैं ॥७॥ वेसव वेदपाठ, गुरु-सेवा, विहित ब्रतादिका अनुष्ठान न कर ब्रह्मचर्याश्रम धर्मशून्य होंगे । देवता एवं अतिथि प्रभृति की वञ्चना कर गृहस्थादि धर्मशून्य होंगे, अर्थात् अग्निहोत्रादि यज्ञ, एवं दानादिका अनुष्टान में विमुख होंगे । निषिद्ध कर्ममें उनसव की यथेष्ट प्रवृत्ति होगी, अधर्म पूर्बक परधन हरणके लिए उनसव की इच्छा होगी, निज भार्याको छोड़कर परस्त्री अगम्या स्त्रीमें गमन करेंगे, अर्थ एवं कामसे सकल दोषों की उत्पत्ति

परस्वलोलुपाः केचित् परदाराभिगामिनः ॥८॥
इति वीक्ष्य समुद्विग्ना धरणी भार-सङ्कुला ।
धेनुरूपधरा दीना कृपणा मलिनानना ॥९॥
गत्वा वै ब्रह्मसदनं रोदमाना पुनः पुनः ।
सगद्गदवचो भूत्वा स्तुत्वा ब्रह्माणमीश्वरं ॥१०॥
सर्वे कलिमलग्रस्ताः पापिष्ठा लोभतत्पराः ।

णामर्थकाममूलत्वादनयो रेवान्तर्भावः । अस्मिन् ग्रन्थे बहुकलिदोष-कथनस्य भगवत्प्रभाव सूचन-फलकत्ववत् ॥८॥ धरणी भूमण्डलाधिष्ठात्री देवता इति । भविष्यत्-पापाभिवृद्धिं वीक्ष्यालक्ष्य भारेण सङ्कुला भाविचिन्तया विह्वलाशया, अतएव समुद्विग्ना सम्यग्जातोद्वेगा । कारुण्योत्पादनाय धेनुरूपा धरा दीना खिन्ना कृपणा निरुत्साहा मलिनानना विकृतमुखी ॥९॥ पुनः पुनः रोदमाना सती ब्रह्मसदनं मेरुवर्त्तिनीं ब्रह्मसभां गत्वा सगद्गदवचः कण्ठरोधेन यथावदनभिव्यक्तवाक् भूत्वा ब्रह्माणं ईश्वरं स्वनिवृत्त्युपायसमर्थं आहेति शेषः ॥१०॥ किमाहेत्यपेक्षायामाह—सर्वे इति सन्ध्यादौ केषाञ्चिद्धर्मप्रवृत्तावपि ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः । पातकानि महान्त्येतत्संसर्गी चैव पञ्चमः ॥ इत्यादि वचनात् संसर्गिणोऽपि पातकित्व-स्मरणात् कलौ पातक-संसर्गस्य

होती है, अतः अर्थलिप्सा एवं परदार गमन शब्दसे यहाँ सकल प्रकार दोष को ही जानना होगा ॥८॥ भूमण्डल की अधिष्ठात्री देवी धरणी इस प्रकार भविष्यत् पाप की प्रवृद्धि को देखकर भावीचिन्ता से विह्वल एवं समुद्विग्ना होगई । कारुण्य उत्पादन के लिए आप धेनु-रूपको धारणकर खिन्ना, निरुत्साहा, एवं विकृतमुखी होगई थी ।९ पुनः पुनः रोदन करते करते धरणी मेरुवती ब्रह्मसभा में जाकर गद्-गद् वाक्यसे स्वानन्द दान समर्थ ब्रह्माको स्तव कर बोलने लगीं ॥१० कलि की प्रथम सन्ध्या में किसी किसी की धर्ममें प्रवृत्ति होने परभी, किन्तु ब्रह्महत्या, सुरापान, चौर्य्य, गुरुपत्नीगमन, एवं इसके संसर्गी पञ्च, महापातकी होते हैं । इस वचन के अनुसार संसर्गकारी भी

महापातक-संयुक्ता देवद्विज-विनिन्दकाः ॥११॥
तेषां पादप्रहारेण कम्पते मामकी तनुः ।
तस्मात् लोक-परित्राणं पृथिव्यां केन जायते ॥१२॥
तदेव कुरु देवेश ! येन शान्ति र्भवेन्मम ।
इत्युक्त्वाधोमुखीभूय स्थिता भू रसुराकुला ॥१३॥

दुष्परिहरत्वात् सर्वे इत्युक्तं । कलि-प्रभवमलेन संसर्गादिना ग्रस्ताः कवलीकृताः प्रायस्तु स्वत एव पापिष्ठाः, पाप-प्रवृत्तौ हेतुमाह–लोभ-तत्पराः । पाप-प्रवृत्ते रवधिमाह महापातकसंयुक्ता देवानां धर्माराध्यानां द्विजानां च धर्मोपदेष्टॄणां विनिन्दका इति । सत्-प्रवृत्ति-सम्भावनाशून्या ॥११॥ तेषां पाद-प्रहारभयेन मामकी तनुः लोकाधारभूता भूमिः कम्पते, तस्मात् पृथिव्यां लोक-परित्राणं केनोपायेन जायते इति विमृश्येति शेषः ॥१२॥ येन समस्तजनोद्धारकेण मम भार-भय-निवृत्त्या शान्ति श्चित्तोद्वेग-निवृत्ति र्भवेत्तदेव कुरु इत्युक्त्वा असुराकुला असुरभावापन्नजन-संभावना-विकला अधोमुखीभूय यदा

महापातकी होता है, इस प्रकार कथनके कारण कलियुगमें पातक संसर्ग-दुष्परिहार्य होनेसे ही मैं कहती है, कलियुग के सकल मानव ही कलिजात मलसे (संसर्गादि के द्वारा) कवलीकृत हैं, प्रायशः स्वयं भी सर्वजन पापिष्ठ होते हैं । उन सबकी पाप प्रवृत्ति के हेतु ही है–लोभ तत्परता, पाप प्रवृत्ति की सीमा है–महापातक संयुक्तता, एवं धर्माराध्य देवगण को एवं धर्मोपदेष्टा द्विजगण की विशेष निन्दा करना । सुतरां सत् प्रवृत्ति की सम्भावना भी इनसवको नहीं है॥११ उनसवके पादप्रहारके भयसे मेरी तनु–लोकाचारभूताभूमि कम्पिता हो रही है, अतएव पृथिवी में लोकत्राण का उपाय क्या हो सकता है, उसकी चिन्ताकर ॥१२॥ हे देवेश ! हेब्रह्मन् ! आप उसका ही विधान करें, जिससे सर्वलोक त्राणकारी के द्वारा मेरा भारभय की निवृत्ति तथा शान्ति हो । यह कहकर धरणी असुर भावापन्न जनगण की सम्भावना कर विकला एवं अधोमुखी होकर अवस्थान

ततः सञ्चिन्त्य देवेशं ब्रह्मा लोक-पितामह ।
वैकुण्ठनगरं गत्वा स्तुत्वा तं पुरुषोत्तमं ॥१४॥
ब्रह्मोवाच–जय कृष्ण जगन्नाथ ! जय वैकुण्ठ-नायक ।
जय देव कृपासिन्धो जय लक्ष्म्याः पते प्रभो ॥१५॥

स्थिता ॥१३॥ तत स्तदनन्तरं यतो लोक-पितामहः अतः स्वप्रजादुःखसम्भावनोद्भूतकरुणया व्याप्तो ब्रह्मा 'सत्त्वं रज स्तम इति प्रकृते र्गुणा स्तै र्युक्तः परः पुरुषः एक इहास्य धत्ते स्थित्यादये हरिविरिञ्चिहरेति संज्ञाः श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनो र्नृणां स्यु'रित्यादि वचनात् जनोद्धारकं देवानामीशं विष्णुमेव सञ्चिन्त्य वैकुण्ठं नगरं श्वेतद्वीपं गत्वा तं पूर्वचिन्तितं पुरुषोत्तमं स्तुत्वा उवाचेति ज्ञेयं । 'स्तुत्वोवाच' इत्यनेन कथं ब्रह्मणा मधुसूदनः पृष्ट इति प्रश्न-प्रकारप्रश्नस्योत्तरो दत्तः, स्तुतिपूर्वकं पृष्ट इति ॥१४॥ स्तुतिमेवाह—जय कृष्णेति । हे कृष्ण ! नित्यानन्दविग्रह शरणापन्नजनाक्लिष्टकरण त्वं जय कलिदोषान् शमय । तदुक्तं श्रुत्या–'सच्चिदानन्द-रूपाय कृष्णायाक्लिष्ट-कर्मणे । नमो वेदान्त-वेद्याय गुरवे बुद्धि-साक्षिणे ॥' कृषि र्भूवाचकः शब्दो

करने लगी ॥१३॥ अनन्तर निज प्रजागण के दुःख की सम्भावनासे उद्भूत करुणा से व्याप्त होकर ब्रह्मा, जनोद्धारक देवगणाधीश, श्री विष्णु की चिन्ता करते करते वैकुण्ठ नगर श्वेतद्वीप में जाकर पूर्व-चिन्तित पुरुषोत्तम का स्तवकर कहने लगे ॥१४॥ स्तुति को कहते हैं,–हे कृष्ण नित्यानन्दविग्रह ! शरणागत जनगण के क्लेशनाशन ! तुम्हारी जय हो । अर्थात्–कलिकलुष राशिको विनष्ट करो । तुम जगन्नाथ हो, सबके स्वामिरूप में सर्वत्र विद्यमान हो, अतः सबका उद्धार भी तुम्हें ही करना होगा । तुम वैकुण्ठ नायक हो, और हम सब वैकुण्ठ किङ्कर हैं, तुम तो वैकुण्ठ के नायक रूपमें सर्वस्वामी हो, अतएव तुम्हारी जय हो । तुम तो देव हो, अर्थात् द्युमान् चिद्रूप हो, तुम विना प्रलयसे ही जगदुद्धारण क्रीड़ा करके जययुक्त होते हो । तुम करुणा सागर हो । अतएव अधिक विलम्ब न करो, तुम

जय नीलाम्बुज-श्याम नीलजीमूत-सौभग ।
कन्दर्पकोटि-सौन्दर्य्य जय श्रीवत्स-लाञ्छन ॥१६॥
जय पीताम्बरधर जय कौस्तुभ-भूषण ।
जय पद्मपलाशाक्ष जय पद्मानन प्रभो ॥१७॥
जय पद्मपदद्वन्द्व तिलपुष्प-सुनासिक ।
जय नाथ जगद्बन्धो विनतासुत-वाहन ॥१८॥

णश्च निर्वृ तिवाचकः । तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥' इत्यादि । हे जगन्नाथ विश्वस्वामिन् ! सर्वस्वामित्वेनापि सर्वोद्धारः कार्य्यः । जय वैकुण्ठ-नायक । विकुण्ठ एव वैकुण्ठ स्तस्य नायक, वयन्तु वैकुण्ठकिङ्करा स्त्वमेव तन्नायकत्वेन सर्वस्वामीति जय जय देव द्योतमानचिद्रूप जय जगदुद्धरणक्रीड़ेति वा, तव क्रीड़यैव उद्धार इति न कोऽपि प्रयत्नः । हे कृपासिन्धो ! करुणया मा विलम्बं कुरु, लक्ष्मयाः सर्वैश्वर्य्याः पते प्रभो समर्थ ॥१५॥ जय नीलाम्बुजवत् श्याम, उपलक्षणमेतत् मृदुत्व-सौरभयोः । जीमूतो मेघ स्तद्वत् सौभगं सर्वजीवनप्रदत्वं यस्य, नतु वर्णः पौनरुक्त्यापत्तेः, तथाच नीलेतिविशेषणं सिताभ्रस्य शरदादौ जीवनप्रदत्वादर्शनात्तद्व्यावृत्त्यर्थं । कन्दर्प कोटिसौन्दर्य्य कन्दर्पः कामः कोटिशब्दस्त्वसंख्यात एव, भगवत्सौन्दर्य्यस्य परिमितत्वासम्भवात् । जय श्रीवत्सलाञ्छन श्रीवत्सो दक्षिणावर्त्त-रोमावलीरूपोऽसाधारण-चिह्नविशेषो यस्य ॥१६॥ पीते अम्वरे नीलसरोरुहकेशरवत् घने तड़िदिव धारयतीति, हे पीताम्बरधर त्वं जय । हे कौस्तुभस्यापि भूषण शोभाप्रद 'भूषणभूषणाङ्गमि'त्युक्तेः । उत्तरार्द्ध स्पष्टम् ॥१७॥ पद्मवत् पदयो द्वन्द्व

सर्वेश्वरी लक्ष्मी के पति हो एव सवकुछ साधन करने में प्रभु (समर्थ) हो ॥१५॥ तुम नीलपद्मवत् श्यामल वर्ण (एवं मृदु-सुगन्धि) हो । नील मेघके समान तुम सवके जीवन दाता हो, असंख्य कामदेव के सौन्दर्य्य तुम्हारे में विद्यमान है, तुम श्रीवत्स (दक्षिणावर्त्त रोमावलि रूप असाधारण चिह्न) लाञ्जन युक्त हो, तुम्हारी जय हो ॥१६॥ तुम पीताम्वरधारी, कौस्तुभभूषण, पद्मपलाश नयन, पद्मासन एवं

जय चक्रगदा-पद्म-शङ्खहस्त चतुर्भुज ।
[संसारमत्तमातङ्ग नागविक्रम-केशरिन्]
जय पद्मा-धरित्रीभ्यां निषेवित-पदाम्बुज ॥१९॥

श्रीगौतम उवाच—

इति संस्तूयमानोऽपि श्रीकृष्णः करुणानिधिः ।
ब्रह्माणं देवदेवेशो जगाद कृपयान्वितः ॥२०॥

यस्य । तिलपुष्पवत् सुष्ठु शोभना नासिका यस्य । नाथ्यते सर्वजनै याच्यते इति नाथः । जगतां वन्धुः सहायकः । विनतायाः सुतो गरुड़ो वाहनो यस्य तस्य सम्वोधनानि ॥१८॥ जय चक्रेतादि स्पष्टं । पद्मा लक्ष्मी धरित्री सर्वविधारिका शक्तिः । धरण्या अपि तदंशत्वादेव धरित्रीति संज्ञा 'गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसेति' भगवद्वचनात् । ताभ्यां निषेविते पदाम्वुजे यस्येति तत्सम्वोधनं । अथवा धरणी दुःखनिवेदनार्थमागतत्वात् तन्निषेवित्व-पर्य्यवसानं । अयमाशयः—'तावत्तापो देहिनां तेऽङ्घ्रिमूलं नो सेवेरन् यावदा-शानुवद्धाः ।' इत्यादि वचनात्त्वत्सेवारतया भूमे स्तापो मा भवत्विति प्रार्थ-नापि सूचिता ॥१९॥ श्रीकृष्णः शरणागत-दुःखकर्षणः स्वभावत एव करुणा णिधि स्तथापि ब्रह्मणा इत्येवं स्तुतोतएव स्तूयमाण एव कृपयान्वितः प्रादुर्भूतो देवदेवेशो देवदेवौ ब्रह्मरुद्रौ तयोरपि ईशो ब्रह्माणं जगाद ॥२०॥ किं जगा-

सर्वसमर्थ हो । तुम्हारी जय हो ॥१७॥ पद्मके समान सुकोमल, सुमृदुल, सुगन्धित तथा सुस्निग्ध तुम्हारे पदयुगल हैं । तिल पुष्पके समान तुम्हारी सुन्दर नासिका है । सकल जन तुमसे प्रार्थना करते रहते हैं, अतः तुम नाथ हो । जगत् समूह के वन्धु, सहायक तुम ही हो, तुम गरुड़ वाहन हो, तुम्हारी जय हो ॥१८॥ तुम शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी हो, श्री एवं भूशक्ति तुम्हारे चरणकमल की सेवा करती रहती है, तुम्हारी जय हो ॥१९॥ श्रीकृष्ण,—शरणागत दुःख-कर्षण, एवं स्वभावतः ही करुणानिधि हैं, तथापि ब्रह्मासे स्तुत होकर ही कृपाकर प्रादुर्भूत होगए ॥२०॥ और अधीश्वर प्रभु ब्रह्मा को

किं वृत्तं जगतीनाथ ब्रूहि किं करवामि ते ।
इत्युक्तः पद्मयोनिश्च प्रोवाच श्रीगदाग्रजम् ॥२१॥

श्रीब्रह्मोवाच—

कलौ पापरता लोकाः स्वाध्याय-विधि-वर्जिताः ।
शून्यवृत्तिद्विजाः शूद्रा ब्राह्मण-द्वेषकारिणः ॥२२॥
द्विजानां गुणतो नीचाः शूद्राः मन्त्र-प्रदायिनः ।
शिश्नोदरपरा विप्रा विप्रत्वे सूत्रधारिणः ॥२३॥

देत्यपेक्षायामाह—किं वृत्तमिति ! हे जगतीनाथ भूम्युपलक्षित ब्रह्माण्डाधिपते ! किं वृत्तं किंशब्दोऽत्र प्रश्ने, यद् वृत्तं तद्ब्रूहि कथय किञ्च ते त्वदर्थमहं किं करवाणि तदपि ब्रूहि इत्येवं भगवतोक्तः । पद्मयोनि स्तन्नाभावुत्पन्नत्वेनाति करुणाविषयः श्रीगदाग्रजं श्रीप्रेमलक्षणा भक्ति स्तद्युक्ता भगवत्तत्त्व-निरूपिका गदा वेदान्तरूपा वाणी तस्या अग्र एव प्रादुर्भवतीति तथा तं प्रेम्नान्वित स्तुति-रूपया वाचा प्रादुर्भूतमित्यभिप्रायः प्रोवाच ॥२१

तदेवाह—कलाविति स्पष्टं । शूद्रवृत्तयो द्विजा येषु तथाभूता ब्राह्मण-द्वेषकारिण इति ब्राह्मणशब्दो द्विजमात्रोपलक्षणः ॥२२

द्विजानामिति स्पष्टं । 'शूद्रा मन्त्रप्रदायिन' इत्यत्र अनच्युतगोत्रा अच्युतगोत्रेषु जातिवुद्धिनिषेधात् । 'विष्णवर्च्चायां शिलाधी गुरुषु नरमति वैष्णवे जातिवुद्धि विष्णो र्वा वैष्णवाणां कलिमलमथने पादतीर्थेऽम्बुबुद्धिः । सिद्धे तन्नाम्नि मन्त्रे निखिलकलुषहे शब्दसामान्यवुद्धि विष्णौ सर्वेश्वरेशेत-

---

बोले—हे ब्रह्माण्डाधिपति ! खवर क्या है कहो तो ? तुम सवके लिए मैं क्या कर सकता हूँ, उसे भी कहो। यह सुन ब्रह्मा श्रीगदाग्रज श्रीकृष्ण को कहे थे ॥२१॥ कलिकाल में सकल लोकही पापरत हैं, एवं वेद पाठादि विधिरहित होंगे। द्विजगण शूद्रवृत्ति को अवलम्बन करेंगे, एवं शूद्रगण द्विजगण को विद्वेष करेंगे ॥२२॥ गुणसे द्विजगण से नीच होने परभी शूद्रगण मन्त्र प्रदानकारी एवं मन्त्र व्यवसायी गुरु होंगे। धर्मतः एवं अधर्मतः शिश्नोदर भोगके लिए ब्राह्मणगण

महाहाराः खर्वकाया अलसा मन्दवुद्धयः ।
जना स्त्वद्विमुखाः सर्वे परद्रव्याभिलाषिणः ॥२४॥
असत्पथरताः सर्वे अगम्यागामिन स्तथा ।
त्यक्तस्वधर्म्म-कर्माणो देवद्विज-विनिन्दकाः ॥२५॥
इति तद्भारमग्ना सा धरणी रुदती पुनः ।*

रसमधी यस्य वा नारकी स' इत्यादि-वचनात् । शिश्नोदरपरा धर्मतोऽधर्मतो वा शिश्नोदर-भोगार्थं स्त्र्यन्नधनाद्यन्वेषणपरा उपलक्षणमेतद्धर्मातिक्रमेणेन्द्रिय-भोगाभिलाषस्यापि, विप्रत्वे सूत्रैकचिह्नवन्तः ॥२३

खर्वकायाः पापप्रभावेन अनुच्चशरीरा अलसा मन्दवुद्धय इति शास्त्रार्थ परिज्ञानासमर्थाः । सर्वदोषाधिपमाह— त्वद्विमुखा इति । 'स्मर्त्तव्यः सततं विष्णो र्विस्मर्त्तव्यं न जातुचित् । सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किङ्कराः ॥' इत्यादिवचनै र्भगवद्विमुखत्वस्य सर्वदोषाधिपत्वाभिधानात् ॥२४

असत्पथरताः असन्तो वेदाप्रामाण्यवादिनो नास्तिका स्तेषां पथि प्रीतिमन्तः अतएवागम्यागामिनः पाषण्डिनां म्लेच्छानां भगिन्यादि विवाह स्वीकारात् तत्प्रीतिमच्चेष्टायामपि निःशङ्कत्वापत्तेः । त्यक्त-स्वधर्म्मकर्माण इति, कामतोऽश्रद्धया वा न तु हरिभक्तितत्परतया, तथा त्यागस्य तु 'सर्व-धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रजे' त्यादौ वहुश उद्घोषितत्वात् ॥२५

स्त्री, अन्न, एवं धनादि आहरण के निमित्त अन्वेषण परायण होंगे, एवं विप्रत्व का परिचायक सूत्रधारण मात्र ही होगा ॥२३॥ उस समय के लोक अनेक भोजनकारी पापसे खर्वकाय, अलस, शास्त्रार्थ ज्ञान हीन होने से मन्दवुद्धिके होंगे। यह सव परद्रव्याभिलाषी एवं सर्वदोषाकर होकर भगवद्विमुख होंगे ॥२४॥ वेद-विद्वेषी नास्तिकों के आनुगत्यसे सवलोकों की मति अधर्म में रुचिशील होगी, वे सव म्लेच्छके समान अगम्यागमन एवं असत्पथके पथिक होंगे। काम एवं अश्रद्धासे वे सव धर्मत्याग करेंगे, एवं देव द्विजगण की निन्दा करेंगे ॥२५॥ इस प्रकार भावीजनों के भारसे पीड़िता तुम्हारे

तस्माल्लोकपरित्राणं पृथिव्यां केन जायते ।
तत् कुरुष्व जगन्नाथ दीनदुर्गति-नाशन ॥२६॥
इति संज्ञापितो देवो ब्रह्मणा प्रभुरच्युतः ।

श्रीगौतम उवाच—

स देवानाह तद् विष्णु र्गुह्याद् गुह्यतमं वचः ॥२७॥
दिविजा भुवि जायध्वं जायध्वं भक्तरूपिणः ।

इति तद्भारमग्ना एवं भविष्यतां तेषां भारचिन्तायां मग्ना सा त्वत्-पादाब्जसेविका धरणी पुनः पुनः यतो रुदती तस्मात् पृथिव्यां येन प्रकारेण लोकपरित्राणं जायते, हे जगन्नाथ ! दीनानां दुर्गतिं नाशयतीति दीनदुर्गतिनाशन तत् कुरुष्व ॥२६॥

स प्रभु रच्युतः अप्रच्युतैश्वर्य्यो विष्णुः विषलृ व्याप्तावित्यस्मात् व्यापकत्वेन सर्वान्त-रभिप्रायं जानन्नपि ब्रह्मणा संज्ञापितः प्रार्थितः सन् गुह्यात् गुह्यतमं वचो देवानाह ॥२७॥

दिविजा हे देवा भुवि कलौ भक्तरूपिणो जायध्वं इति वीप्सा आवश्यक-द्योतनार्था । ननु भगवन्तं विना किमस्माभि र्भविष्यति तत्राह — युष्माभिः संकीर्त्तनारम्भे कृते सत्यहमपि शचीसुतो भविष्यामि । तत्सुतत्वेन प्रादु र्भविष्यामि । संकीर्त्तनमेवाविर्भावहेतुः इत्यभिप्रायः । उक्तञ्चान्यत्रापि—

चरणों की सेविका धरणी पुनः पुनः रोदन कर रही है । अतएव जिससे पृथिवी के लोकों का परित्राण हो, हे जगन्नाथ ! हे दीनदुर्गति नाशन ! आपको वह ही करना होगा ॥२६॥ श्रीगौतम बोले,–इस प्रकार अवितर्क्यैश्वर्य्य प्रभु विष्णु सर्वान्तर्य्यामी होने परभी ब्रह्मासे सम्यक् रूपसे निवेदित होकर देवगण को गुह्यसे भी गुह्यतम वाक्य कहे थे ॥२७॥ हे देवगण ! तुम सब कलिके प्रारम्भ में भक्तरूप धारणकर पृथिवी में अवतीर्ण हो जाओ । यदि आशङ्का हो कि–भगवान् व्यतीत हम देवगण क्या कर सकेंगे–उसका समाधान कर कहते हैं,–तुमसब श्रीहरि सङ्कीर्त्तन का आरम्भ करनेपर मैं भी शची

कलौ संकीर्त्तनारम्भे भविष्यामि शचीसुतः ॥२८॥
कृते जपै र्मम प्रीति स्त्रेतायां होम-कर्मभिः ।
द्वापरे परिचर्य्याभिः कलौ संकीर्त्तनैरपि ॥२९॥

श्रीब्रह्मोवाच—

ब्रूहि मे करुणासिन्धो ! कीर्त्तनं किंस्वरूपकं ।

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च । मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥२८॥

युगभेदेन स्वतोषहेतुं वदन् कलौ कीर्त्तनस्यैव प्राधान्यमाह—कृते जपैरिति । कृते सत्ययुगे जपै र्जपान्वितध्यानै, र्वाक्यान्तरे ध्यान-प्रयोग-दर्शनात् उभयत्रोभावनुसन्धेयौ । त्रेतायां होमकर्मभि र्मखविशेषैः, द्वापरे परिचर्य्याभिः पूजादिभिः कलौ संकीर्त्तनैरपीत्यपिशब्दात् पूजाया अपि संग्रह स्तत्र कीर्त्तनस्य प्राधान्यात् साक्षात् ग्रहणं; तदुक्तं 'यज्ञैः संकीर्त्तन–प्रायै र्यजन्ति हि सुमेधसः । (११।५।३२) 'कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः । द्वापरे परिचर्य्यायां कलौ तद्धरि-कीर्त्तनादिति [भाग १२।३।५२] ॥२९

एवं कीर्त्तनस्यैव प्राधान्येन कलितारकत्वं श्रुत्वा ब्रह्मा कीर्त्तन-स्वरूपं तत्र प्रीति-प्रकारं च पृच्छति—ब्रूहीति । हे करुणासिन्धो ! यथा सिन्धोः सलिलक्षयो नास्ति, तथा कृतयामप्येतावत्यां करुणायां त्वत्करुणा-तादवस्थ्या-

---

सुत होकर आविर्भूत हो जाऊँगा । अभिप्राय यह है कि–**श्रीहरि-नाम सङ्कीर्त्तन ही मेरा आविर्भाव का कारण है** ॥२८॥ युगभेद से अपना सन्तोष के कारणों को कहते कहते कलियुग में श्रीहरिनाम सङ्कीर्त्तन का ही प्राधान्य है, उसको कहते हैं । सत्ययुग में जप ध्यानसे, त्रेतायुगमें होमसे, द्वापर युगमें पूजादि द्वारा एवं कलियुगमें मैं सङ्कीर्त्तनादि के द्वारा सन्तुष्ट होता हूँ, मूलके अपि शब्दके द्वाराभी पूजादि की आवश्यकता का बोधहोता है । कलियुग में कीर्त्तन का प्राधान्य होने से साक्षात् रूप से कीर्त्तन का ही निर्देश हुआ हैं ॥२८॥ श्रीभगवान् के मुख से कीर्त्तन का ही कलितारकत्व सुनकर ब्रह्मा कीर्त्तन स्वरूप एवं भगवत् प्रीति स्वरूप को जानने के लिए पुछने

कथं वात्र भगवतः परा प्रीति र्भविष्यति ॥३०॥

श्रीभगवानुवाच--शृणु ब्रह्मन् प्रवक्ष्यामि संकीर्त्तनमतः परं ।

समाहितमना भूत्वा सारात्सारतरं हि यत् ॥३१॥

मृदङ्गैः करतालैश्च स्वर-भाव-समन्वितैः ।

रागरंगान्वितं गानं यतः स्यात्तुल्यकीर्त्तनं ॥३२॥

ते शव्देनोच्यते राधा ना शव्देनोच्यते जनः ।

त्वयैव कीर्त्तनं किंस्वरूपकमिति तत्स्वरूपमपि ब्रूहि । कथं वात्र कीर्त्तने भगवत स्तव परा प्रीति र्भविष्यति, तदपि ब्रूहि ॥३०

इत्ति विज्ञापितो भगवान् कीर्त्तन-स्वरूपमाह—शृण्विति । हे ब्रह्मन् ! अतः परं यत् सारात्सारतरं संकीर्त्तनं तत् प्रवक्ष्यामि; त्वं च समाहितमना भूत्वा शृणु ॥३१॥

मृदङ्गै रुपलक्षणमेतत् तन्त्र्यादे र्वाद्यमात्रस्य । करतालैः करेण दीयमानैकताली-प्रतिम-ठावितालैः स्वरभाव-समन्वितैः स्वरैः षड्जृषभ-गान्धारादिभिः भावैर्गानार्थानुकूलेनेत्रमुखकरादि-चेष्टाभिः सहकृतैः यद् रागरङ्गान्वितं गीतोच्चारणं यत स्तुल्यं समानं मिलितस्वरं कीर्त्तनं स्यात् तत् संकीर्त्तनमिति शेषः ॥३२॥

तत्र गान-स्वराधार-शव्दमुपदिशति शव्देनेति । 'ते' शव्देन राधा

लगे,—हे करुणासिन्धो ! कीर्त्तन का स्वरूप क्या है, आप कहें ? एवं उस से आप भगवान की परमा प्रीति किस प्रकार होती हैं, उस को भी कहें ।३०। भगवान् ब्रह्मा के द्वारा निवेदित होकर कीर्त्तन स्वरूप को कहते हैं । हे ब्रह्मन् ! अतः पर मैं सारात् सार रूप सङ्कीर्त्तन प्रसङ्ग को कहता हूँ एकाग्र मन से तुम उसे सुनो ॥३१॥ मृदङ्ग वीणादि वाद्य के साथ, एकताल प्रतिम तालादि के द्वारा षड्ज, ऋषभादि स्वर से एवं गानादि के अर्थ के अनुसार नेत्रमुख हस्तादि की चेष्टा विशेष से जो रङ्ग रागमय गीतोच्चारण होता है, ४।५ व्यक्ति मिलित होकर स्वर का उच्चारण करते हैं. उस को

तेनेति श्रुतिमात्रेण यथैवार्द्रतरोभवं ॥३३॥

तथ चात्र भविष्यामि भक्तयानुग्रह-काम्यया ।

सहस्रशोऽवतारा मे गीता ब्रह्मन् युगे युगे ॥३४॥

वाणमार्गैं र्वेदमार्गैं रिपूणां तत्र संक्षयं ।

उच्यते भक्तमुखेन 'ते' इत्युक्ते सम्वोध्यमानत्वच्छव्दाभिधेय-भगवतः शक्तित्वात् 'ना' शब्देन 'नृ' शब्द-प्रथमान्तरूपेण पुरुष-वोधकेन तत्स्वामी पुरुषोत्तमोऽजनो जन्मरहित उच्यते—इति हेतोः 'तेना' शब्द-श्रवणमात्रेणाहं यथैव यथावदेवार्द्रतरो द्रवितचित्तो भवं, तयो रस्मत्परप्रेमास्पद-स्वरूपत्वात् ॥३३

एवं सङ्कीर्त्तन स्वरूपं तस्य चात्मनः प्रीतिकरत्वमभिधाय स्वाविर्भावमाह-तथाचेति । हे ब्रह्मन् ! यथा युगे युगे मे सहस्रशोऽवतारा अतीता स्तथाहञ्च भक्तयानुग्रहकाम्यया करुणा-परवशो भविष्यामि प्रादुर्भावं करिष्यामि ३४

पूर्वावताराणां चरितं समासेनाह— वाणमार्गैरिति । वाणमार्गैं रिपूणां संक्षयं विनाशं वेदमार्गैः कर्मज्ञान-भक्तियोगै र्भक्तानां तारणं कृत्वा स्वयशः क्षितौ ख्यापितं— इत्यन्वयः । तत्र भक्तानां तारणं कृत्वेत्यनेनाभक्तानां कर्मादिभिरतरणं सूचयन् कर्मादिसिद्धे र्भक्तयधीनत्वाद्वेदमार्गेऽपि स्वतन्त्रतया भक्तिरेव

सङ्कीर्त्तन कहते हैं ॥२२॥ संकीर्त्तन में गान एवं स्वर का आधार स्वरूप शब्द का उपदेश करते हैं । ते शब्दोच्चारण से त्वत् शब्द का अभिधेय श्रीभगवान् की स्वरूप शक्ति स्वरूप श्रीराधा का बोध होता है । 'ना' शब्द 'नृ' शब्द का रूप है, प्रथमा का एक वचन में 'ना' शब्द होता है, सुतरां 'न' शब्द से राधापति पुरुषोत्तम का ही बोध होता है । अतएव 'तेना' शब्द सुनने से मैं द्रवित हो जाता हूँ ॥३३॥ सङ्कीर्त्तन का स्वरूप, एवं उस से प्रसन्नता होती है, अतः निजाविर्भाव का कारण को कहते हैं, हे ब्रह्मन् ! युग युग में जिस प्रकार मेरा असंख्य अवतार हो चुके हैं, उस प्रकार मैं भक्तगण को अनुग्रह करने के लिए करुणार्द्र होकर अवतार ग्रहण करूँगा ॥३४॥ पूर्व पूर्व अवतार गण के चरित्र को संक्षेप में कहता हूँ । वाण मार्ग से अर्थात् वाण योजना के द्वारा रिपुयों को विनष्ट कर एवं वेद मार्ग

भक्तानां तारणं कृत्वा ख्यापितं स्वयशः क्षितौ ॥३५॥
कलौ नष्टदृशामेष मत्पद्यार्क उदेष्यति ॥३६
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥३७॥

श्रेयस्करीति ध्वनितं । 'यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु न्यूनं संपूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतं ॥' आराधितो यदि हरि स्तपसा ततः किं नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम् ? अन्तर्वहि र्यदि हरि स्तपसा ततः किं नान्तर्वहि र्यदि हरि स्तपसा ततः किं ? ईश्वर-प्रणिधानाद्वासन्नः समाधिलाभः 'युञ्जानानामभक्तानां प्राणायामादिभि र्मनः । अक्षीणवासनं राजन् ! दृश्यते क्वचिदुत्थितं ।' (१०।५१।६०) नैष्कर्म्यमप्यच्युत-भाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनं । कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणं । (६।५।१२) मद्भक्तिविमुखानां हि शास्त्र-गर्त्तेषु मुह्यतां । न ज्ञानं न च मोक्षं स्यात्तेषां जन्मशतैरपि' इत्यादिवचनात् ॥३५

कलावतीर्णस्यात्मनः कृत्यमाह—कलाविति । कलियुगे पापात्मके न तपता ? नष्टदृशामलब्धश्रुतिज्ञानदृष्टीनां लब्धेऽपि ज्ञाने विषयरागादिना परिभूतज्ञानानामेष स्तमो-निःशेषकरः मत्पद्यार्कः मदुदितो मत्स्वरूप-प्रत्यायक श्लोकात्मकोऽर्क उदेष्यति मच्चक्षुषः सूर्य्यवन्मन्मुखात् प्रादुर्भविष्यति ॥३६॥

पद्यमेवाह—हर इति । अत्र हरिशब्देन भक्तानां सर्वदृष्टादृष्ट प्रति

से अर्थात् कर्म ज्ञान भक्ति योग से भक्तत्राण कर पृथिवी में निज ख्याति का विस्तार करता हूँ ॥३५॥ कलियुगावतारो स्वयं भगवान् के कृत्य को कहते हैं। पापात्मक कलियुग में जो लोक श्रुति ज्ञान रूप दृष्टि सम्पन्न नहीं हैं, एवं लब्ध ज्ञान होकर भी जो लोक विषयानुरक्ति के द्वारा परिभूत ज्ञान हो चुके हैं, उन सब के लिए ही तमो विनाशक मेरे द्वारा उदित मेरा स्वरूप का परिचायक श्लोकात्म सूर्य उदित होगा। मेरे चक्षु से उदित सूर्य के समान ही मेरे मुख से निर्गत यह श्लोक उदित होगा ॥३६॥ श्लोक को कहते हैं—

सकृद् द्वि स्त्रि र्यथाशक्ति यावज्जीवमथापि वा ।

वन्धकदोषहरत्वं मनोहरत्वं चोक्तं । 'कृष्ण' शब्देन श्यामसुन्दरस्य भगवतः सदानन्दात्मकत्वं । रामशब्देनच स्ववात्सल्यादि-भावेन भगवत्संयोगमिच्छतां योगिनां रमणाधारत्वमुच्यते । सम्वोधन-प्रयोगस्त्वाविर्भावाकाङ्क्षया,तदावृत्तिः प्रेम्ना ॥३७॥

अधिकारि-भेदेन तदुच्चारण-विभागं तत्फलञ्चाह— सकृदिति । नामापराधहीनः सकृदेकवारमेव, तदुक्तं 'सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयं । वद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति' इत्यादि । अज्ञात-निस्वल्पनामापराधे तु द्विः, अज्ञात-स्वल्पे त्रिः अज्ञातनामापराध-वाहुल्ये यथाशक्ति । ज्ञानिपूर्वक-प्रसह्य नामापराधाचरणे तु य यावज्जीवं व्याहरन्नुच्चारणं कुर्वन् श्वपचोऽपि निःसंशयं मम भक्तः स्यात्; किमुतान्ये ? तदुक्तं—'अहो वत श्वपचोऽतिगरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्त्तते नाम तुभ्यं । तेपु स्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्य्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ।' [३।३३।७] इत्यादि । यावज्जीवमिति सुषुप्तेरामरणं 'सता सौम्य तदा संपन्नो भवतीत्यादिश्रुतेः सुषुप्तौ जीवभावापगमात् तत्रोच्चारणासम्भवाच्च । न चाशुद्धौ शास्त्रीयकर्मानुपयोगात् कथं यावज्जीवं विधिरिति वाच्यं, 'चक्रायुधस्य नामानि सदा सर्वत्र कीर्त्तयेत् । नाशौचं कीर्त्तने तस्य स पवित्रकरो यतः । 'अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोपि वा । यः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

यहाँ हरि शब्द के द्वारा भक्त गण के सर्वाधिक दृष्ट अदृष्ट प्रतिवन्धक दोष नाशकत्व एवं मनोहरत्व का वोध होता है। कृष्णशब्द से श्याम सुन्दर भगवान का सदानन्दात्मकत्व, एवं राम शब्द से स्ववात्–सल्यादि भाव द्वारा भगवत् संयोग इच्छाकारी योगियों का रमणाधारत्वका वोध होताहै, सम्वोन्धन पद समूह का प्रयोग एवं पुनरुक्ति आविर्भाव की आकाङ्क्षा एवं प्रीत्याधिक्य का सूचक है ॥३७॥
आधिकारी भेद से उक्त पद्य का उच्चारण विभाग एवं उस का फल भी प्रदर्शित होते हैं। जो व्यक्ति 'हरि इस अक्षर द्वय का एकवार

व्याहरन् श्वपचोऽपि स्यान्मम भक्तो न संशयः ॥३८॥

स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स वाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥' इत्यादि-वचनात् तत्स्मृता-वशुद्धस्यासम्भवात्, नामापराधास्तु स्मृतौ संगृहीताः—'सन्निन्दाऽसति नाम-वैभवकथा श्रीशेशयो र्भेदधी रश्रद्धा श्रुतिशास्त्रदेशिकगिरां नाम्न्यर्थवादभ्रमः नामास्तीति निषिद्धवृत्ति–विहित त्यागौ च धर्मान्तरैः साम्यं नामनि शङ्करस्य च हरे नामापराधा दश' इति । अत्र 'भेदधीः' शब्देन विरोधबुद्धे रपराधत्व-निर्देशः । अन्यथा स्वरूपतो भेदो नास्त्येव प्रतीतिभेद इति । तत्रासति नामा-पराधे सकृदुच्चारणमाहात्म्यं पूर्वं दर्शितं, सत्यपराधे तदनुसारेणावृत्तिविधानं तु पद्मपुराणे दर्शितं—'सर्वापराधकृदपि मुच्यते हरिसंश्रयः । हरेरप्यपराधान् यः कुर्य्याद् द्विपदपांसनः । नामाश्रयः कदाचित् स्यात्तरेदेव स नामतः ॥ नाम्नोऽपि सर्वसुहृदो ह्यपराधात् पतत्यधः । नामापराध-युक्तानां नामान्येव हरन्त्यघं ॥ अविश्रान्त-प्रयुक्तानि तान्येवार्थकराणि चेति । नामापराधहीनस्य

मात्र उच्चारण करेगा वह स्वरूप जागरण रूप मोक्ष का अधिकारी होगा । अज्ञात एवं अत्यल्प नामापराध होने पर दो वार उच्चारण करे, अज्ञात स्वल्पापराध होने से तीनवार उच्चारण करे । एवं अज्ञात अनेक नामापराध होने पर यथाशक्ति नामोच्चारण करे । ज्ञान पुर्वक नामापराध करने से यावज्जीवन नामोच्चारण विधेय है । इस नाम के उच्चारण से जब चण्डाल भी मेरा भक्त हो जाता है, तब दूसरे की वात् ही क्या है ? श्रीमद्भागवत में उक्त है, अहो । जिस की जिह्वा में तुम्हारे प्रीतिकर नाम उच्चारित होता है, वह चण्डाल होने पर भी महागरीयान् है, जो लोक श्रीहरिनाम ग्रहण करता है, उनका सर्व तपस्या, सर्व तीर्थ स्थान, सर्व वेदाध्ययन यावतीय सत् कर्म रूप सकल अनुष्ठान न करने पर भी उक्त सकल कर्म सम्पन्न होता है, अर्थात् श्रीहरिनाम ग्रहण उक्त सकल अनुष्ठानों का फल नाम ग्रहण कारी व्यक्ति प्राप्त कत लेता है । यावज्जीवन शब्द से सुषुप्ति व्यतीत आमरण काल को जानना होगा, कारण सुषुप्ति में जीव भाव नहीं रहता है, इसलिए उस समय श्रीहरिनामोच्चारण करना

सर्ववेदविदो विप्राः पुराणागम-पारगाः ।
न चेन्मद्भक्तभक्ता स्ते दूरे तिष्ठन्ति वारिताः ॥३९॥

तु नामावृत्तिः प्रभोः कृतज्ञतया प्रेमोद्गारेण वा, मद्भक्तिः स्यादिति पुरुषार्थ-सीमाकथनं । भक्तौ निरावरण-स्वरूपानन्दस्य नानालीलातरङ्गोल्लसितत्वेन प्रेमवृत्तिषु प्रतिफलितत्वेन ब्रह्मगुणापरस्यानन्द-समानभानात्मक-मुक्तेरपि भक्ते र्गरीयसीत्वात् । अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धे र्गरीयसी'त्यादि (४।२५।३३ वचनात् ॥३३॥

व्यतिरेकेण भक्तिमाहात्म्य- दार्ढ्यायाभक्तानां स्वरूपाप्राप्तिमाह-सर्वेति ये वर्णतोऽपि श्रेष्ठा विप्रा बोधतोऽपि सर्ववेदविदः पुराणागमसमाप्तिं गता अपि मद्भक्तभक्ता नो चेत्तर्हि वेदादिरहस्यपरिज्ञानातन्महत्त्वादपि वारिता दूर एव तिष्ठन्ति । 'विप्रा राजन्यवैश्यौ च प्राप्ता हरिपदान्तिकं । श्रौतेन जन्म-नाथापि मुह्यन्त्याम्नायवादिनः । 'विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-पादार-विन्द-विमुखात् श्वपचं वरिष्ठं । मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थं प्राणं पुनाति सकुलं न तु भूरिमानः (७।९।१०) ॥३९॥

सम्भव नहीं है । ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है कि अशुद्धि काल में शास्त्रीय कर्मानुष्ठान निषिद्ध होने पर भी नामोच्चारण भी यावत् जीवन सम्भव नहीं होगा । कारण श्रीहरि का नाम सदा सर्वत्र कीर्त्तन करें, उस नाम सङ्कीर्त्तन में अशौचादि को मानना उचित् नहीं है, कारण श्रीहरिनाम ही पवित्र कारक है । अपवित्र अथवा पवित्र ही हो सबअवस्था में ही जो श्रीहरि का स्मरण करता है, उसका वाह्य आभ्यन्तर शुद्ध होता है । इस वचन से श्रीहरिस्मरण से अशुद्धता की सम्भावना ही नहीं है, नामापराध की कथा का उल्लेख वैष्णव स्मृति शास्त्र में है ॥३८॥ व्यतिरेक से भक्ति माहात्म्य को दृढ़ करने के लिए अभक्तों की गति को कहते हैं, जो वर्ण श्रेष्ठ ब्राह्मण ज्ञानि श्रेष्ठ सर्व वेदवित् पुराणादि में निष्णात है, अथच वह भक्त नहीं है, तो वेदादिक रहस्य ज्ञाता न होने से श्रीहरि से वह दूर में ही रहताहै ॥३९॥ सम्प्रति भक्त ही अतिप्रियहै, उसको

अपि चेत् सुदुराचारो पुक्वशः श्वपचोऽथवा ।
मद्भक्तभक्तिकृत् स स्यान्मम कौस्तुभ-सन्निभः ॥४०॥
भक्तरूपमहं धृत्वा भक्ताज्ञा-प्रतिपालकः ।
मत्परानुद्धरिष्यामि घोरसंसार-सागरात् ॥४१॥

भक्ताभक्तानां स्वस्वरूपाप्राप्तिमभिधाय भक्तभक्तानामतिप्रियत्वमाह-अपि चेदिति । सुष्ठु अतिशयेन दुराचारोपि चेदिति कर्मतो नीचतामुक्त्वा जातितोऽप्याह पुक्कशः श्वपचोऽथवा इति । एवमतिनीचोऽपि यदि मद्भक्तानां भक्तिकृत् अनुरागसेवानिरतः, तर्हि स मम कौस्तुभसन्निभ इति नित्यं कण्ठ-संलग्नः स्यात् । भक्तभक्तानां कौस्तुभापेक्षया ऽतिप्रियत्वेऽपि भगवन्मुख-नेत्रादेश्चन्द्रपद्मादिवदगत्योपमोक्तिः । तदुक्तं 'न तथा मे प्रियतमः पद्मयोनि र्न शङ्करः । नैव सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान् [११।१४] इत्यादि ॥४०॥

यस्माद् भक्ता आत्मनोऽप्यतिप्रिया स्तस्मादहमपि भक्तरूपं धृत्वा तत्रापि भक्तानामाज्ञापरिपालकः सन् मत्परान् मदेकशरणान् घोरात् दुःखात्म-कात् संसाररूप-सागरात् तत्तन्मशक्यादहमुद्धरिष्यामि । संसारान्निः सार्य्योद्ध्र्वस्वपदे धरिष्यामि । तदुक्तं गीतायामपि—'तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसार-सागरादिति ॥४१॥

कहते हैं। अतिशय दुराचार होने पर भी कर्म के द्वारा नीचता को प्राप्त करने पर भी, पुक्कश, श्वपच जाति में जन्म होने से भी, यदि हरिभक्त होता है, एवं अनुराग से सेवा में नियुक्त होता है, तव वह व्यक्ति कौस्तुभ की भाँति नित्य ही श्रीहरि के कण्ठ संलग्न होकर रहता है ॥४०॥ भक्तगण आत्मा से भी अतिप्रिय होते हैं, और मैं भी भक्त रूप धारण कर भक्त की आज्ञा पालन करता हूँ। अतः मदेकाश्रय भक्त गण को घोर दुःखात्मक संसाररूप दुर्लङ्घ्य सागर से उद्धार करूंगा। संसार से निकाल कर उन सव को निजधाम में भेजूंगा ॥४१॥ भक्तों के वाह्य चिह्न को कहते हैं, ललाट में

तिलकाङ्कितभालाः श्रीतुलसीकण्ठिकाश्रिताः ।
शङ्खचक्रलसद्वाहुमूलाः कौपीन-वाससः ॥४२॥
मद्भक्ता विचरिष्यन्ति कलौ भागवतोत्तमाः ॥४३॥

भक्तानां वाह्यचिह्नान्याह—तिलकेति । तिलकाङ्कितभाला इति सान्तरालोद्ध्र्वपुण्ड्रधराः, निरन्तरालोद्ध्र्वयन्त्रस्य तिर्य्यक्पुण्ड्रस्य च निषेधात् । उद्ध्र्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु विशाले सुमनोहरे । लक्ष्म्या सह समासीनो देवदेवो जनार्द्दनः । निरन्तरालं यः कुर्य्यादूद्ध्र्वपुण्ड्रं द्विजाधमः । स हि तत्र स्थितं विष्णुं लक्ष्मीञ्चैव व्यपोहति, इति । तिर्य्यक् पुण्ड्रं न कुर्वीत संप्राप्ते मरणे ऽपि चेत्यादिवचनात् । श्रीतुलसी-कण्ठिकाश्रिता इत्यत्र कण्ठिकाशब्देन श्री तुलस्याः कण्ठसंलग्नत्वं विवक्षितं । तदप्युक्तं 'ये कण्ठलग्नतुलसी-नलिनाक्षमाला ये वा ललाटपटले लसदूद्ध्र्वरेखाः । ये वाहुमूल-परिचिह्नित-शङ्खचक्रा स्ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्तीति', शङ्खेत्यादि स्पष्टं । कुत्सितं पीनत्वम-प्येति कुपीनं लिङ्गमाच्छादयतीति कौपीनं तद्वासो येषामित्यनेनान्तरवैष्णवत्व-द्योतकः विरागोऽपि ध्वनितः । तदुक्तं 'वैष्णवो द्विविधः प्रोक्तो वाह्योऽभ्यन्तर एव च । वाह्यस्तु शंखचक्राभ्यामान्तरो वीतरागतः ।' इति ॥४२॥

आन्तरं मुख्यं चिह्नमाह—मद्भक्ता इति । मदनुरागिणः मत्प्रीत्यति-शयेनान्यत्र गतरागा इत्यर्थः । तदप्युक्तं—'सा परानुरागिणः इति । एवं द्विविध-लक्षणयुक्तत्वेन भागवतोत्तमाः स्वप्रयोजन-रहिता अपि कलिजनो-द्धारणायविचरिष्यन्ति । 'महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीनचेतसां । निःश्रेयसाय भगवन् कल्पते नान्यथा क्वचित् (१०।८।४)। विष्णो र्भूतानि लोकानां पावनाय चरन्ति हि' इत्यादि वचनात् ॥४३॥

सान्तराल ऊद्ध्र्व,रेखा कण्ठमें श्रीतुलसी माला,वाहुमूलमें शङ्ख, चक्र मुद्रा एवं परिधान में कौपीन है ॥४२॥ सम्प्रति आन्तर के मुख्य चिह्नादि को कहते हैं। वे सव मेरा भक्त होते हैं, मेरे प्रति अतिशय प्रीति युक्त होते हैं,एवं अन्यत्र विगतराग होते हैं,इसप्रकार वाह्य एवं आभ्यन्तर द्विविध लक्षण युक्त भागवतगण निज प्रयोजन न रहने पर भी कलिजीवोद्धार करने के लिए इतस्ततः विचरण करेंगे ॥४३॥

मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि निश्चितं ।*
तत् स्वयं भुवि भक्ता वै जायध्वं भक्तितत्पराः ॥४८
येन लोकस्य निस्तार स्तत् कुरुध्वं ममाज्ञया ।
धरित्री भविता चाभी मयैव द्विजदेहिना' ॥४९॥
सद्य स्तत्र 'स्वगोपानां शान्ता' * तु कमलालया ।

स्वकर्त्तव्यमुक्त्वा स्वसहवासेन लोभयन् देवानाज्ञापयति—मद्भक्ता इति । यतो मद्भक्ता यत्र गानं कुर्वन्ति, तत्राहं निश्चितं तिष्ठामि, तस्माद् यूयं साक्षात् न त्वंशैः भुवि भरतखण्डे भक्तितत्परा भक्ता जायध्वं ॥४८॥
येन संकीर्त्तनेन लोकस्य निस्तार स्तन्ममाज्ञया कुरुध्वं । ततश्च मयैव द्विजदेहिना ब्राह्मणाकार–प्रादुर्भूतेन धरित्री अभी निर्भया भविता भविष्यति ॥४९॥
अन्यावतारानप्याह—सद्य इत्यादि । सद्यः शीघ्रमेव मम प्रादुर्भावोत् साहेन तत्र नवद्वीप-मण्डल एव या स्वीयानां मयात्मसाद्भूतानां व्रजगोपोपलक्षितमदनुरागिणां या शान्ता सात्त्विकी संसारानुवन्धिनी मदेकपरा कमलालया मन्मुखकर-चरणाद्युपमानमालक्ष्य कृतपद्मवनवासा लक्ष्मी नाम्ना गदाधर इति 'गद व्यक्तायां वाची' त्यस्माद् गदा व्यक्ता वाक् नाम्ना निमित्तभूतेन प्रेम्नोच्चै र्मन्नामानुकीर्त्तनेन सफलव्यक्तवाक्त्वाद् गदाधर इति धरणीतले

कारण, देव गण को भी लुब्ध करने के लिए कहते हैं, मेरा भक्त जहाँ पर रहते हैं, वहाँपर मैं अवश्य ही रहता हूँ। अतएव तुम सब स्वयं ही (अंशसे नहीं) पृथिवी के भरत खण्ड में भक्त रूप धारण कर अवतीर्ण हो जाओ ॥४८॥ जिस से संकीर्त्तन के द्वारा लोक निस्तार हो मेरी आज्ञा से तुम सब वैसा ही करोगे, तत् पश्चात् में द्विजरूप में प्रादुर्भूत होकर सब को एवं धरा को निर्भय करूँगा ॥४९॥
अन्यान्य अवतारों का वर्णन प्रसङ्ग से कर रहे हैं। सत्वर ही मेरा प्रादुर्भाव से उत्साहित होकर उस नवद्वीप मण्डल में ही व्रज गोपिका रूप में प्रसिद्धा अनुरागिजनों के मध्य में शान्ता अर्थात् सात्त्विकी

नाम्ना गदाधर इति विख्यातो धरणीतले ॥५०॥
बलरामो ममैवांशः सोऽपि मत्पृष्ठमेष्यति ।

विख्यातो भविष्यति । 'सा वाग् यया तस्य गुणान गृणीते ।' (१०।८०।७) यस्यां न मे पावनमङ्गकर्म स्थित्युद्भवप्राणनिरोधमस्य । लीलावतारेप्सितजन्म वा स्याद् वन्ध्यां गिरं तां बिभृयान्न धीरः (११।११।२०) ॥ तद्वाग् विसर्गो जनताघविप्लवो यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि । नामान्यनन्तस्य यशोङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः (१।५।११)। न यद्वचश्चित्रपदं हरे र्यशो जगत् पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् । (१।५।१०) तद्ध्वाङ्क्षतीर्थं न तु हंस-सेवितं यत्राच्युत स्तत्र हि साधवोऽमलाः ॥' इत्यादिभिरण्वय-व्यतिरेकाभ्यां भगवन्नामानुकीर्त्तनेनैव वाक्साफल्याभिधानात् । लक्ष्म्याः पुंस्त्वं तु निरन्तर-मदनुध्यानेन भृङ्गीकीटन्यायेन मदाकारत्वापत्त्या ॥५०॥
व्रजलक्ष्म्यवतारमुक्त्वा शेषावतारमाह—बलरामो इति । बलरामो ममैवांशः स्वरूपः संकर्षणव्यूहावतारत्वात् । सोऽपि मत्पृष्ठमेष्यति मदनुगमनं करिष्यति । तदुक्तं—नित्यानन्दस्य भगवतो रामशब्दाभिधेयपर-ब्रह्मात्मकत्वमनन्तावतारत्वं च सर्वज्ञातायां श्रुत्यापि ' रमन्ते योगिनोऽनन्ते

सहाय कारिणी मदेक परा कमलालया, मेरे हस्तपदादि में उपमान रूप में विराजित कमलों को देखकर जिन्होंने कमल वन में बास करना स्वीकार कर लिया है, जिन को लोक सर्वलक्ष्मीमयी रूप में जानते हैं, उनकी "गदाधर" नाम से पृथिवी में प्रसिद्धि होगी। "गद" धातुका अर्थ व्यक्त कर वाक्य का उच्चारण करना। प्रेमातिशय्य से उच्चस्वर से मेरा नाम कीर्त्तन करते करते जिन का वाक्य सफल हुआ है, उनका ही नाम गदाधर है। श्रीभगवत् नाम गुण गान से ही वाक्य की सार्थकता होती है, इस का विवरण श्रीमद्-भागवत में बहुशः उक्तहै, निरन्तर मेरा ध्यान करते करते भृङ्ग कीट न्याय से मेरी आकृति को प्राप्तकर लक्ष्मी स्त्रीजाती होने पर भी गदाधर स्वरूप में पुरुष देह को अङ्गीकार किया है ॥५०॥ एवं प्रथम व्रज लक्ष्मी श्रीभानुनन्दिनी का अवतार प्रसङ्ग को कह कर

नित्यानन्द इति ख्यातो न्यासिचूड़ामणिः क्षितौ ।५१॥
कृत्वावधूत-वेशं स धर्मान् भागवतान् वहून् ।

नित्यानन्दे चिदात्मनि । इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते' इति । यस्माद् योगिनो भक्तियोग-पारगा अद्वैत-रूप सनातन-जीव-गोपालभट्टादयः नित्यानन्दे श्रीनित्यानन्दप्रभौ अभिरमन्ते परां प्रीतिं कुर्वन्ति । कथम्भूते—अनन्ये शेषावतारे चिदात्मनि कृष्णचैतन्यस्यात्मभूते इति हेतो रसौ परं ब्रह्म रामशब्देन वलरामत्वेनाभिधीयत इत्यर्थः । तस्य लोकसिद्धां संज्ञामाह—नित्यानन्द इति ख्यात इति मदंशत्वेन नित्य-निरतिशय मदनुरागवलान्नित्यः कालापरिच्छिन्न आनन्दो यस्य तथाभूतः सन् नित्यानन्द इति क्षितौ ख्यातः लोकेऽपि तथात्वेन प्रसिद्धि गतः । स कथम्भूतो न्यासिचूड़ामणिः ऐहिकामुष्मिक-सुखतिरस्कारेण तत्साधन-पराङ्मुखीभूय नैष्कर्म्यज्ञाननिरतानां परमहंसानां मद्भक्तत्वेन शिरोभूषणः । 'नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनमि' त्यादि (१।५।१२) वचनैः भगवद्भावहीनस्य नैष्कर्म्यस्यापि शोभाभावश्रवणात् ॥'५१॥

श्रीनित्यानन्दभगवतो भविष्यच्चरितमाह—कृत्वेति । स एव श्रीनित्यानन्दो ऽवधूतवेशमाश्रमाचारशून्यमाकार-विशेषं नाट्यैतिप्रसिद्धं 'ज्ञान-

सम्प्रति शेषावतार प्रसङ्ग का वर्णन करते हैं, मेरा ही अंश (स्वरूप) वलराम भी मेरा ही अनुगमन करेंगे। आप लोक में नित्यानन्द संज्ञा से भूषित होंगे। मेरा अंश होने के कारण, नित्य निरतिशय अनुराग के आतिशय्य से नित्य-अर्थात् अपरिच्छिन्न आनन्द है, जिन का देह ही नित्यानन्द है, ऐहिक पारलौकिक सुख को छोड़कर एवं उक्त साधनों के प्रति वितृष्ण होकर मेरा भक्त वन कर नैष्कर्म ज्ञान निरत परमहंस गणों के शिरो भूषण रूप में आप विराजित होंगे ।५१ श्रीनित्यानन्द प्रभु के भावीचरित की वर्णना करते हैं, नित्यानन्द, आश्रमाचार रहित अवधूत वेश धारण कर निज आचरण के द्वारा निवृत्ति मार्गीय पथिको को शास्त्रीय भक्ति मार्ग प्रदर्शन के लिए भागवत धर्म की शिक्षा प्रदान करेंगे ॥५२॥ अनन्तर प्रवृत्ति मार्गीय-

ग्राहयित्वा जनानित्थं गृहिणामाश्रमं ततः ॥५२॥
जाह्नव्यादिभि रात्मानं दर्शयिष्यति मानवान् ॥५३॥

निष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तो वानपेक्षकः । सलिङ्गानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः ।' (११।१८।२८) यं न सन्तं न चासन्तं नाश्रुतं न वहुश्रुतं । न सुवृत्तं न दुर्वृत्तं वेत्ति कश्चित् स वै परि' इत्यादि शास्त्रोक्त-भगवद्भक्तिमार्गं दर्शयन् कृत्वा वहून् भागवतान् धर्मान् जनानित्थं ग्राहयित्वा निवृत्तिमार्गनिरतान् मुख्याधिकारिणो 'ऽभ्यर्हितं हि पूर्वमिति' न्यायेन शिक्षयित्वा ततः प्रवृत्तिमार्गेन निरयात्मके संसारे पतमानानुद्धरिष्यन् गृहिणामाश्रमं यथा भवति तथा, नतु गृही सन् जाह्नव्यादिभि रात्मानं दर्शयिष्यति । जाह्नवी रेवत्यवतारभूता प्रथमा भार्य्या । आदि-शब्देन वारुण्यवतारभूतवसुधाख्या द्वितीया भार्य्या, वीरभद्राख्यः पुत्रश्चान्ये च ये सम्वन्धिन स्तेषां ग्रहणं; तैः सह स्वात्मानं स्वाघट-घटनापटीयस्याचिन्त्यया शक्त्या केवलं दर्शयिष्यति । नतु तत्सङ्गी भविष्यति । 'असङ्गो नहि सज्जते' इति श्रुतेः । कथम्भूतः स मानवान् स्वतः प्रमाणभूत-श्रुतेश्चासत्त्वेन सर्वज्ञतया प्रमाण-कुशलो नतु किञ्चिदपि वेद-

पथिकों को नरक स्वरूप संसार से उद्धार करने के लिए स्वयं भी गृहस्थोचित आदर्श शिक्षा देने के लिए जाह्नवी प्रभृति के साथ मिलित होकर निज स्वरूप का प्रदर्शन करेंगे। जाह्नवी-रेवती का अवतार श्रीनित्यानन्द की प्रथमा पत्नी, आदि शब्द से वारुणी का अवतार वसुधा उनकी द्वितीय पत्नी को जानना होगा। एवं वीरभद्र नामक पुत्र का वोध भी उक्त शब्द से हुआ है। अन्यान्य नित्यानन्द परिकरों का ग्रहण भी उक्त शब्द से हुआ है। इन सव के साथ श्रीनित्यानन्द निज अघटन घटन पटीयसी अचिन्त्य शक्ति की सहायता से स्वयं को प्रकट करेंगे किन्तु उन सव में आसक्त नहीं होंगे। सन्न्यासी, अवधूत, गृहस्थाश्रमी होकर भी ईश्वर स्वरूप होने से श्री नित्यानन्द के स्वतन्त्राचरण से कोई दोष नहीं होता है। कारण, स्वतः प्रमाण स्वरूप श्रुति का असद् भाव होने से भी अर्थात् तदीय आचरण वाह्य दृष्टि से शास्त्र सम्मत न होने पर भी उनकी सर्वज्ञता

कामदेव इतो गत्वा ध्रुवानन्देति संज्ञितः ।
जाह्नवीशिष्यतामेत्य लोकान्निस्तारयिष्यति ॥५४॥

विरुद्धकारी, ईश्वराणां स्वतन्त्राचारस्यापि 'कुशलाचरितेनैषामिह चार्थो न विद्यते । विपर्य्ययेण वानर्थो निरहङ्कारिणां प्रभो । किमुताखिलसत्त्वानां तिर्य्यङ् मर्त्यदिवौकसां । ईशितुश्चेशितव्यानां कुशलाकुशलत्वयोः ।' [१०।३३।३३-३४] इत्यादिवचनाच्छास्त्रसम्मतत्वात् ॥५२-५३॥

वासुदेव-संकर्षण-व्यूहद्वय-प्रादुर्भावमुक्त्वा प्रद्युम्नव्यूहाविर्भावमाह — कामदेव इति । कामस्य लोकप्रजनस्य देवोऽधिष्ठाता मद्व्यूहः प्रद्युम्नाख्य इतो मदंशत्वात् मत्सन्निधानाद् गत्वा, नतु स्वर्गादिन्द्रसन्निधानात्, अतएव ध्रुवो नित्यः भगवत्स्वरूपोल्लासात्मको आनन्दो यस्येति व्युत्पत्त्या ध्रुवानन्देति संज्ञितः, लौकिकदेवादि-कामसुखस्याध्रुवत्वात् तद्व्यावृत्त्यै ध्रुवेति विशेषणं,संकर्षण-व्यूहान्तर गणत्वात् प्रद्युम्नव्यूहस्य जाह्नव्याख्य-संकर्षणावतार शक्तिशिष्यतां तदानुकूल्यमेत्य मदनुकीर्त्तनानुरागाद्युपदेशेन लोकान् निस्तारयिष्यति ॥५४॥

शक्ति के कारण आपने सप्रमाणित आचरण ही किया हैं। उनके आचरण में कहीं पर भी वेद विरुद्धता नहींहै। इस विषय में जिज्ञासा हो तो श्रीभागवत के १०।३३-३३-३४ श्लोक एवं उसकी टीकादि द्रष्टव्य है ॥५३॥ वासुदेव एवं सङ्कर्षण के व्यूहद्वय को कहकर प्रद्युम्न व्यूह का आविर्भाव को कहते हैं, लोक प्रजन काम का अधिष्ठाता मेरा व्यूह प्रद्युम्न, ध्रुवानन्द नाम से ख्यात होंगे। ध्रुव-नित्य, भगवत् स्वरूप का उल्लासात्मक आनन्द है जिनका इस व्युत्पत्ति के अनुसार बोध होता है कि लौकिक एवं दैव कामसुख अध्रुव (अनित्य) है। इस प्रकार सुख का निराकरण करने के लिए ही 'ध्रुव' यह विशेषण दिया गया है। सङ्कर्षण व्यूह का अन्तर्गत ही प्रद्युम्न व्यूह है, अतः जाह्नवी नामक सङ्कर्षणावतार की शिष्यता अर्थात् उनकी आनुकूल्य को प्राप्तकर मेरा कीर्त्तनादि के द्वारा लोक निस्तार कार्य को करेंगे ॥५४॥ भगवान् अनिरुद्ध के अवतार की

नैचीं तनुं समास्थाय लोकशिक्षार्थ-तत्परः ।
विख्यातो हरिदासो यो मम भक्तिं करिष्यति ॥५५

अनिरुद्धस्य भगवत स्तन्नियम्यनाभिपद्मोद्भुत-ब्रह्माभेदेनावतारमाह — नैचीमिति । 'तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां यद् गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रि रजोऽभिषेक' मित्यादिना [१०।१४।३४] भक्तरजोयोग्यं वपुः प्रार्थ्य लब्ध्वा तत्र व्रजवासि-रजोभिषेकेण भक्तजन्मयोग्यतामवाप्य सर्वोत्तमवर्णेषु विविध महत्त्व-युक्तेषु महत्त्व-साङ्कर्येण भक्तिमाहात्म्य-यथावदस्फुरणशङ्कया स्वकर्म्म फलनिर्द्दिष्टां 'यां यां योनिं व्रजाम्यहं । तत्र तत्राच्युता भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि' इत्यादिना भक्तानां भक्तावेवाग्रहवतां योन्याग्रहादर्शनात् नैचीं तनुं स्वीकृत्य 'न नीचो यवनात् पर' इत्यादि वचनान्नीचत्वावधिभूतां यवनतनुं समास्थाय अजो ब्रह्मा सर्व्वदेवश्रेष्ठोऽपि लोकशिक्षार्थ-तत्परः सन् यवनखस-पुक्कस श्वपचानामपि नामानुकीर्त्तनादिना सर्वलोकपूज्यत्वं पावनत्वं श्रुति-स्मृत्यादिषु दर्शनेन सर्वविषयाभिलाष-मानमदादिकं हित्वा तत्परतैव कार्य्येति

वर्णना उनकी नाभि पद्मजात ब्रह्मा के साथ अभेद मानकर करते हैं। इस गोकुल के किसी भी वन में किसी भी जीव के चरण की रेणु प्राप्त करने के लिए उपयुक्त अतिनीच जन्मलाभ करना ही मेरा महाभाग्य का परिचायक है। इत्यादि वाक्य से जो भक्त पदरज लाभ योग्य देह की प्रार्थना कर उस को प्राप्त किए हैं। एवं व्रज वासिगण के चरण रजोभिषेक से भक्त जन्म योग्यता को प्राप्त किये हैं, विविध महत्त्व युक्त उत्तम वर्णादि में महत्त्व का संमिश्रण होने से भक्ति माहात्म्य का यथायथ स्फुरण नहीं भी हो सकता है, इस आशङ्का से भक्तगण भक्ति संग्रह के लिए यत्नवान् होते हैं। उत्तमवर्ण में जन्म ग्रहण का आग्रह न होने पर भी नीच यवन तनु धारण कर सर्व देव श्रेष्ठ ब्रह्मा भी लोक शिक्षा प्रदान करने में तत् पर होंगे। यवन, खस, पुक्कश, चण्डालादि को भी भगवन्नाम ग्रहण से पूज्यता होती है, पावनत्व भी उनका होता है। इस वृत्तान्त को श्रुति पुराणादि में जानकर, सकल विषयों के प्रति अभिलाष मान, मदादि

रुद्रोऽवतीर्य्य मद्भक्ति श्रीमदद्वैत-संज्ञकः ।

स्व द्वारा लोकपूज्यत्वादि प्रख्यापनेन यो लोकशिक्षारूपार्थं तत्परो भूत्वा हरिदास इति विख्यातो मम भक्ति करिष्यति । तदुक्तं भगवत्कीर्त्तनादिपराणां अतिनीचानामपि श्रैष्ठं श्रुत्यादिषु अपि । यश्चण्डालः शिव इति वाचं वदेत्तेन सह भुञ्जीत, तेन सह वसेत्, तेन संवदेत् । विप्राद्द्विषड़्गुणयुतादरविन्दनाभपादारविन्दविमुखात् श्वपचं वरिष्ठं । मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ प्राणं पुनाति सकुलं न तु भूरिमानः । [१।६।१०] अहो वत श्वपचोऽतोगरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्त्तते नाम तुभ्यं । तेपु स्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्य्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥ [३।३३।७] किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुक्कसा आभीरशुह्मा यवनाः खसादयः । अन्येपि जीवा यदपाश्रयाश्रयाः शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥ [२।४।१७] महापापप्रसक्तोऽपि ध्यायन्निमिषमच्युतं । सद्य स्तपस्वी भवति पंक्तिपावनपावन' इत्यादि । ननु तथाप्यसुर–संपद्युक्तशरीरग्रहणं भक्तानामनुचितमिति चेन्न, 'द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च विष्णुभक्तिपरो दैव आसुर स्तद्विपर्य्यय' इति विष्णुपुराणे विष्णुभक्तिविहीनस्यैवासुरत्वनिश्चयात् । भक्तियुक्तस्या नीचयोनेरपि देवसर्गत्वे निश्चयात् ।५५

का त्याग कर भगवत् परायण होना ही वाञ्छनीय है, स्वयं आचरण कर उक्त विषय को दिखाने के लिए लोक शिक्षा रूप प्रयोजन साधन करने में तत्पर है, आप हरिदास नाम धारण कर प्रसिद्ध भक्त होंगे भगवत् कीर्त्तन परायण अतिनीच व्यक्ति भी श्रेष्ठ होता है, उस में वेदादि भागवत से प्रमाण देते हैं। यदि कोई कहे कि—भक्तगण के लिए आसुर सम्पद् युक्त शरीर धारण करना ठीक नहीं है। उस के उत्तर में कहते हैं, यह आशङ्का विचार सह नहीं है। कारण विष्णु पुराण कहते हैं—इस जगत् में सृष्टि दो प्रकार की होती है, एक दैव, द्वितीय-आसुरी विष्णु भक्ति परायण दैव सृष्टि में तद्भिन्न जनगण आसुरिक सृष्टि में अन्त र्भुक्त होते हैं, तात्पर्य यह है कि विष्णु भक्ति हीन ही असुर है, विष्णु भक्ति युक्त व्यक्ति असुर कुल में उत्पन्न होने पर भी वह दैव सृष्टि में गण्य होता है ।।५५।। रुद्रावतार

ग्राहरिष्यति लोकांश्च यत्नात् कारुणिकः प्रभुः ॥५६

रुद्रावतारमाह—रुद्रोऽवतीर्य्येति । रुद्रः सदाशिवः अवतीर्य्य भूमौ गौड़देशे एव आविर्भूय श्रीमदद्वैतसंज्ञकः । 'उभयोः प्रकृतिरेका प्रत्ययभेदात्तु भिन्नवद् भान्ति कलयति कश्चिन् मूढ़ो हरिहर भेदं विना शास्त्रमि'त्यादिवचनात् श्रीमता मया स्वरूपतो द्वैताभावात् श्रीमदद्वैतः संज्ञया नामोच्चारणेन कं सुखं यस्य इति संज्ञकः; तदप्युक्तं शिवेन 'रकारादीनि नामानि शृण्वतो मम पार्वति ! मनः प्रसुदतामेति रामनामाभिशङ्कया' इति । श्रीमदद्वैतश्चासौ संज्ञकश्चेति श्रीमदद्वैतसंज्ञकः । नचैतद् विष्णुशिवयोरभेदव्याख्यानं गौड़सम्प्रदायविरुद्धमिति वाच्यं, चैतन्यचरितामृते कृष्णदासकविराजेनापि तथोक्तत्वात् । 'अद्वैतं हरिणाद्वैतादाचार्य्यं भक्ति-शंसनात् । भक्तावतारमीशं तमद्वैताचार्य्यमाश्रये ।' इति तथाभूतः सन् यतः कारुणिकः परमदयालुः प्रभुः समर्थः । समर्थस्य दयालुताभावे पीड़कत्वमेव पर्य्यवस्यति, दयालोश्च सामर्थ्याभावे पीड़ितत्वमेवेति हेतोः दोषद्वय-व्यावृत्यर्थमत्र विशेषणद्वयं ज्ञेयं । तदप्युक्तं-'दयालोरसमर्थस्य दुःखायैव दयालुता । विश्वोद्धारधुरीणस्य सा तवैकस्य शोभते ।' इति भगवतः शम्भो र्नामकीर्त्तनानुरागः नामदानएवाद्भुतस्वभावश्च तेनैव स्वसुखादपि निर्दिष्टः । 'अहं भवन्नाम गृणन् कृतार्थो वसामि काश्याम-

की कहते हैं। सदाशिव (रुद्र) गौड़देश में अवतीर्ण होकर 'अद्वैत' नाम धारण करेंगे। हरि एवं हर—नाम द्वयकी प्रकृति (धातु हृ) एकही है, किन्तु प्रत्यय की विभिन्नता से (विश्वास की भिन्नता से) प्रथम इन् प्रत्यय, द्वितीय में अन् प्रत्यय होकर हरि हर होता है। भिन्न की भाँति प्रतीति होती है। शास्त्र ज्ञान हीन मूढ़ जन ही हरि हर में भेद कल्पना करते हैं। इत्यादि प्रमाण से मैं श्रीमान् लक्ष्मी पति हूँ, मेरे साथ स्वरूपतः द्वैत का अभाव से एकत्व से ही श्रीमद् अद्वैत नामोच्चारण से 'क' सुख प्राप्त करते हैं। आप सकल लोक को यत्न पूर्वक भक्ति ग्रहण करायेंगे। कारण-आप परम कारुणिक एवं समर्थ हैं। समर्थ होकर जो दयालु नहीं होता है, वह पीड़न कारी होता है, और दयालु होकर भी जो समर्थ नहीं है, वह स्वयं

नारदः श्रीनिवासेति रामानन्देति तुम्बुरुः ।
विख्यातिं प्राप्य मद्भक्तौ कुरुतां भक्तिमव्यये ॥५७॥

निशं भवान्या । मुमूर्षमानस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव राम नाम' इति ॥ ५६ ॥

देवर्षित्वेन भगवद्गुणगान-नृत्यनिरतत्वेन च देवेभ्योऽभ्यर्हितत्वात् प्रथमं नारदाद्यवतारमाह—नारद इति । नारदः नारं नरस्य पुरुषोत्तमस्येदं नारं भक्तियोगं तदात्मकं भागवताख्यपुराणं वा प्रह्लादध्रुवव्यासादिभ्यो ददातीति तथा नरस्य जीवस्य उपाधिं हार्द्दं संशयादि वा नारं तत् द्यति अवखण्डयतीति तथा स श्रियो वास्तवलक्ष्म्या हरिभक्तिरूपाया नितरां नित्यं वासोऽस्मिन्निति व्युत्पत्त्या श्रीनिवास इति । 'मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद' इति वचनाद् भगवतो गुणगानप्रियत्वान्नित्यगुणगाननिरते तस्मिन् भगवतो नित्यमभिव्यक्तितया निवासात् तदव्यभिचारिण्याः श्रियोऽपि नित्यनिवासाद्वा तथा विख्यातिं प्राप्य तथा तुम्बुरोरपि नित्यनारद-सत्सङ्गेन भगवद्

ही पीड़ित होता है। इस लिए दोषद्वय का निराकरणार्थ उनको दयालु एवं समर्थ कहा गया है ॥५६॥ देवर्षि रूप में एवं भगवद् गुण नृत्यादि में निरत हैं, इसलिए देवगण के पूज्यत्व होने से प्रथम श्रीनारद अवतार का निरूपण कर रहे हैं। नारद शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—नर-पुरुषोत्तम का पदार्थ को नार कहा जाता है, अर्थात् भक्ति योग, किम्वा भक्ति योगात्मक पुराण का दान जो प्रह्लाद ध्रुव, नारद, व्यास प्रभृति को किए हैं, वह ही नारद हैं। अथवा नर की उपाधी-किम्वा हृदयस्थ संशयादि को नार कहते हैं, जो उस का विनाश करते हैं, उनको नारद कहते हैं, श्रीनिवास नाम की व्युत्पत्ति भी इस प्रकार है, बास्तव लक्ष्मी हरि भक्ति स्वरूपिणी श्री के साथ जो नित्य वास करते हैं, वह ही श्रीनिवास हैं। हे नारद मेरा भक्त जहाँपर गान करता है, मैं वहाँ अवस्थान करता हुँ। इस नियम के अनुसार भगवान् नित्य ही निज गुणगान प्रिय हैं। भक्त भी नित्य गुण गान निरत हैं, उस में भगवान् की नित्य ही अभिव्यक्ति

बृहस्पति र्वासवगुरुः सार्वभौमो भविष्यति ।
नानान्तेवासिनः स्तत्र शास्त्राण्यध्यापयिष्यति ॥५८॥
पुनः शिरोमणि र्भूत्वा न्यायादीन् प्रथयिष्यति ॥५९

गुणगान परत्वाद् रमन्ते परमभागवता अस्मिन् भगवानेव वा गानप्रियत्वाद्रमत्यस्मिन् इति रामं भगवद्गुणगानं तस्मिन्नानन्दो यस्येति व्युत्पत्त्या रामानन्देति विख्यातिं प्राप्य तावुभौ मद्भक्तौ अव्यये अविनाशस्वरूपे मयि भक्ति कुरुतां करिष्यत इत्यर्थः ॥५७॥

देवगुरुत्वात्तेभ्यः प्रथमं बृहस्पतेरवतारमाह—बृहस्पतिरिति । वासवस्येन्द्रस्य गुरु स्तस्यापि भगवन्मार्गे प्रवर्त्तको बृहस्पतिः समस्तभूमौ भक्तिशास्त्र प्रवर्त्तकत्वात् सार्वभौम स्तन्नामको भविष्यति । तदेव शास्त्र-प्रवर्त्तकत्वं निर्दिशति—नानेति तत्रैवावतारे नानान्तेवासिनो बहुविधान् शिष्यान् मम भक्तिप्रतिपादकानि शास्त्राण्यध्यापयिष्यति ॥५८॥
अतिललित-सुरभि मधुमत्या भक्तिलताया दुष्टपशुरूपनास्तिकादि प्रतिपक्षभञ्जनमालक्ष्य तद्रोधनाय कण्टकावरणवत् न्यायादीनामावश्यकत्वमाकलय्य

रूप में निवास होता है, इस लिए श्रीनिवास नाम है, अथवा भगवान की नित्य सहानुगामिनी श्री भी नित्य निवास करती है, इस लिए आप श्रीनिवास हैं। तुम्बुरु मुनि भी नित्य नारद मुनि के सत्सङ्ग में रहकर भगवद् गुणगान परायण हुए थे, अतः परम भागवत गण उन में रमण (आनन्दास्वाद) करते हैं, इस व्युत्पत्ति से रामपदसिद्ध होता है। उस का अर्थ है—भगवद् गुणगान, उस गुण गान में ही जिन का आनन्द है, वह "रामानन्द" नाम से ख्यात होंगे। ये दोनों भक्त, अव्यय अविनाशि स्वरूप मेरे प्रति भक्ति भाव रखेंगे।५७ देव गुरु बृहस्पति का अवतार की वर्णना करते हैं, वासव इन्द्र के गुरु भक्ति मार्ग प्रवर्त्तक बृहस्पति है, आप समग्र भूमि में भक्ति शास्त्र का प्रवर्त्तन कर "सार्वभौम" नाम से भूषित होंगे। इस अवतार में अनेकानेक शिष्य को भक्ति शास्त्र पढ़ायेंगे ॥५८॥ दुष्ट पशुरूप नास्तिकादि प्रतिपक्ष व्यक्तियों के द्वारा अति ललित, सुरभि, मधुमती

चन्द्रो भवेद् वर्द्धमानो यस्तु दयालुतावधिः ।

माधुर्य्यमये भक्तशरीरे कर्कश-तर्कभाषणायोग्यतामवगम्य रूपान्तरेण न्यायादि-प्रवर्त्तकत्वमाह—पुनरिति । पुनर्द्वितीय-जन्मनि शिरोमणि र्भूत्वा न्यायस्त-र्कात्मकमनुमानं तदेवादि प्रधानं येषु तानन्यत् प्रमाणप्रमेय-निर्णयान् प्रथयिष्यति विस्तारयिष्यति । तदुक्तं भगवत्तत्त्ववोधक-शास्त्ररक्षक-कण्टकावरणत्वं तर्कशास्त्रस्य । "आत्मनो यत्तु नानात्वं मया प्रौढ़्या प्रकल्पितं । एतत्तु कण्टकावरणं तत्त्वं तु वादरायणे ॥५९॥

श्रीकृष्णप्रादुर्भाव-कुलबीजत्वेन सर्वदेव-प्राधान्येन चन्द्रावतारमाह-चन्द्र इति यस्तु दयालुताया अवधिः सर्वजनाह्लादकश्चन्द्रः स मिथ्याभूतानित्याह्लाद-जनकत्वेनाद्यावधि स्वनामवैयर्थ्यमाज्ञाय भगवद्भक्ति प्रवर्त्तकत्वेन पारमार्थिकाह्लादजनकतया स्वनाम-सार्थक्यमिच्छन् भक्तिकलयाऽहरहो वर्द्धमान-संज्ञको भविष्यति । चन्द्र-सम्वन्धेन तत्सन्निधावेवान्यग्रहताराद्यवतारमाह—एवमन्ये इति । एवमन्येऽपि ये देवाः स्वयं द्योतमाना ग्रहादय स्तेपि यतो भारता

भक्तिलता का भञ्जन हो सकता है, यह जान कर, उसका निरोध करने के लिए कण्टकावरण की भाँति न्यायादि दर्शन शास्त्र की भी आवश्यकता की उपलब्धि कर माधुर्य्यमय भक्त शरीर में कर्कश तर्क शास्त्र प्रतिपादन की अयोग्यता का अनुभव करके रूपान्तर से न्यायादि शास्त्र का प्रवर्त्तक रूप से सार्वभौम का निर्देश कर रहे हैं, आप पुनर्वार रघुनाथ शिरोमणि रूप से न्यायादि शास्त्र का विस्तार करेंगे। भगवत्तत्त्व वोधक शास्त्र का रक्षक-कण्टकावरण, न्याय शास्त्र है, उस में उक्त है, मैंने आत्मा का नानात्व कहा है, यह कल्पना प्रौढ़िवाद से की है, इस शास्त्र को कण्टकावरण रूप से मानना उचित होगा, प्रकृत तत्त्व का प्रवक्ता श्रीवादरायण हैं, उनके ब्रह्मसूत्र एवं तदर्थ निर्णायक श्रीभागवत में यथार्थ तत्त्व वर्णित हैं ५९ श्रीकृष्णाविर्भाव का कुल वीजस्वरूप सर्व श्रेष्ठ देवता चन्द्रावतार की वर्णना करते हैं, जो दयालुता की अवधि एवं सकल जन को आनन्द प्रदायक है, वह ही चन्द्र हैं, जिन्होंने मिथ्याभूत अनित्य आह्लाद

एवमन्ये भविष्यन्ति देवाः स्वांशेन भारताः ॥६०॥
तत्रैव भविता ब्रह्मन् व्यासः केशव-भारतिः ।

अन्यावभातने रतिमन्तो ऽतएव मिथ्यानित्यप्रकाशे तोषमनवाप्य भक्तिप्रकाश-प्रवर्त्तनाय स्वांशेन स्वीयेन सात्त्विकमात्रांशेन भक्तरूपेण भविष्यन्ति । भोगोप-युक्त-राजसांशस्य भक्तावनुपयोगात् ॥६०॥

लोके गुरुशिष्यसंप्रदायस्योद्धार बीजत्वादावश्यकत्वख्यापनाय गुरु र्गुरुतमो धाम इत्यादिना प्रथितः सर्वश्रुतिमूलो जगद्गुरुरपि स्वगुरुत्वेन व्यासावतार माह—तत्रैवेति । हे ब्रह्मन् ! तत्रैव गौड़मण्डले मत्प्रेरितान् मन्मुखनिःसृत-वेदान् विभज्य व्याख्यातृत्वाद् व्यासः सर्ववेदरहस्यं भगवद्भक्ति जानन् केशव-विषयैव भारती वाणी यस्य तथाभूतः केशव-भारति स्तन्नामको भवति इत्येकं वाक्यं । तदुक्तं सर्ववेदरहस्यत्वं भक्ते र्भगवद्व्यासेन—'आलोड्य सर्व-शास्त्राणि विचार्य्यैव पुनः पुनः । इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा' इति । ननु सन्न्यासोपदेशेन, यथा जन्मव्याजेन नन्दावतारो जगन्नाथमिश्रः,

---

जनकार्थ होने से अद्यावधि निज नाम की व्यर्थता को समझ गया है, वह सम्प्रति भगवद् भक्ति प्रवर्त्तक रूप में पारमार्थिक आह्लाद प्रद होकर निज नामार्थ को सार्थक करने की इच्छा की है, एवं भक्ति कला से प्रतिदिन वृद्धि प्राप्त कर वर्द्धमान नाम धारण करेंगे चन्द्र के सन्दर्भ में उनके सन्निकटवर्त्ती अन्यान्य ग्रहतारादि का अवतार का निर्णय करते हैं, इस प्रकार जो सब स्वयं प्रकाशमान ग्रहादि थे, एवं दूसरे को प्रकाश करने में सहयोग देते थे, वे सब ही इस वार मिथ्या अनित्य प्रकाश से सन्तुष्ट न होकर भक्ति प्रकाश प्रवर्त्तन कार्य को अपनाये हैं, किन्तु उस में भोगोप युक्त राजसांश उत्तम भक्ति मार्ग के लिए अनुपयोगी है, अतः केवल स्वीय सात्त्विक मात्रांश को लेकर भक्त रूप में होंगे ॥६०॥ लोक जगत् में उद्धार के बीज रूप में गुरु शिष्य सम्प्रदाय की आवश्यकता है, उसको दर्शाने के लिए सर्व श्रुति मूल भूत जगद् गुरु होकर भी स्वगुरुरूप श्रीव्यासावतार का वर्णन करते हैं। हे ब्रह्मन् !—मेरे मुख से निःसृत वेद समूह का विभाग

सन्न्यासस्योपशेदेन भविष्यति गुरु र्मम ॥६१॥
इन्द्रोऽवतीर्य्य मतिमान् पृथिव्यां पृथिवीपतिः ।

यशोदावतारभूता शची च, तथा सन्न्यास–प्रवृत्तिव्याजेन मम विश्वगुरोरपि गुरु र्भविष्यतीति द्वितीयं वाक्यं । तथाच वाक्यभेदेन नात्र क्रिया–पौनरुक्ति-दोषः ॥६१॥

पुरन्दरावतारमाह—इन्द्रोऽवतीर्य्येति । इन्द्रः इदी परमैश्वर्य्ये इत्यस्मादधिकैश्वर्य्यवान् सर्वदेवगणराजः स यतो मतिमान् स्वैश्वर्य्यत्वस्य तदीय मुहूर्त्तावच्छेदेन क्षयित्वं वस्तुतो मिथ्यात्वं, तत्रापीर्ष्या मात्सर्य्यादि–संग्रस्त-त्वमसुरभयाद्याकुलत्वं विमृश्य परमैश्वर्य्यद्योतके नाम्नि लज्जमानो मद्भक्तौ जातसम्यङ्मतिः स्वर्गे भोगातिशयेन विक्षेपाधिक्याद् यथावद् भक्तिमसंभाव्य पृथिव्यामवतीर्य्य तत्रापि कलिदोषगणात् पृथ्व्या मद्भक्त्या पालयन् वस्तुतोऽपि पृथिवीपतिः स प्रतापेन प्रकृष्टेन संसारानलतापेन रोदितीति प्रतापरुद्रः । अनेन वैराग्यं सूचितं । यद्वा भक्ति-प्रतापेन माहात्म्योत्कर्षेण हर्षवेगाद्धर्षाश्रुभिः

कर व्याख्या करने से जिन का नाम व्यास होगा, वह सर्व वेदरहस्य भगवद् भक्ति को जान कर गौर मण्डल में केशव (श्रीकृष्ण) विषयिणी ही भारती अर्थात् वाणी का उच्चारण करेंगे: अत: उनका नाम केशव भारती होगा । जन्म के छ्छल से नन्द यशोदाके अवतार जिस प्रकार जगन्नाथ मिश्र, शचीदेवी हैं, उस प्रकार–सन्न्यास प्रवृत्ति के छल से विश्वगुरु मेरा भी आप गुरु होंगे ॥६१॥ पुरन्दर का अवतार प्रसङ्ग को कहते हैं— अधिक ऐश्वर्य्यवान् सर्व देव गणराज इन्द्र मतिमान् हो गए । अर्थात् काल द्वारा निजाधिकृत ऐश्वर्य प्रभृति का क्षयित्व, एवं वस्तुतः मिथ्यात्व जानकर, उस में भी ईर्षा, मात्सर्यादि द्वारा ग्रस्तत्व असुर के भयादि से व्याकुलता की चिन्ता करके परमैश्वर्य सूचक निजनाम से लज्जित होकर मेरी भक्ति में सम्यक् प्रकार से मनो निवेश किए । किन्तु स्वर्ग में भोगाधिक्य के कारण विक्षेपाधिक्य की सम्भावना है, उस से ठीक ठीक भक्ति नहीं हो सकती है, इस प्रकार विवेचना कर ही पृथिवी में अवतीर्ण होंगे ।

प्रतापरुद्रो विख्यातो मद्भक्तानां समाश्रयः ॥६२॥
अन्ये देवगणाः सर्वे मद्भक्ताः मत्परायणाः ।

स्वयं रोदित्यन्यांश्च रोदयतीति तथा । यद्वा भक्तिप्रतापेण कलिदोषाणां रुद्रः प्रलयकर्त्ता तथाभूतः सन् प्रतापरुद्रः इति विख्यातो मद्भक्तानां समाश्रयः सम्यग् वाह्याभ्यन्तरचौरभय––रक्षणात् संवासादिना चाश्रयो भविष्यतीति शेषः ॥६२॥

एवमिन्द्रावतारमुक्त्वा स्वपरिकरावताराणामतिरहस्यत्वात्तान् सुरसहकारेणैव सूचयन् सुराणामवतारानाह— अन्ये इति । अन्येऽपि ये सर्वे देवगणा मद्भक्ता मत्सेवनरता स्तथा मत्परायणा अहमेव परमयनं आश्रयो येषां ते मामकीं भक्तिं कुर्वन्ति करिष्यन्तीत्यर्थः । अतो माभूद् भूमेः कलिभयमित्यभिप्रायः । हे ब्रह्मन् ! एतत् समाहित एकाग्रचित्तस्त्वं शृणु । स्वपरिकर–पक्षे द्विविधानुः क्रीड़ार्थकतया देवगणाः क्रीड़ारता गोपीगोपसमूहाः । तद्गानस्मरणरताः प्रह्लादादि भक्तगजाश्च, ये मद्भक्ता मदनुरागिणोऽतएव मद्परायणा मन्निविष्ट-मनःप्राणत्वेन मदेकाश्रया इत्यर्थः । तत्र श्रीजगन्नाथमिश्रः श्रीनन्दः ।

यहाँपर भी कलिकृत दोषराशि से मुक्तकर मेरी भक्ति के द्वारा पृथिवी का पालन कर इन्द्र वास्तविक ही पृथिवी पति होंगे । वे प्रकृष्ट संसारानल ताप से रोदन करते हैं, इस लिए :'प्रतात रुद्र" नाम से वैराग्यवान् होंगे । अथवा भक्ति के प्रतापसे एवं माहात्म्योत्कर्ष से आनन्दित होकर आनन्दाश्रु विसर्जन करते करते जो स्वयं रोदन कर अन्यान्य जनगण को रोदन कराते हैं, वे ही प्रताप रुद्र हैं । अथवा भक्ति प्रताप के द्वारा जो कलिदोष समूह का रुद्रवत् प्रलयकर्त्ता है, वे ही प्रतापरुद्र नाम से ख्यात होकर भक्त गण का समाश्रय होंगे । वाह्य एवं आभ्यन्तर चोरभयादि से भक्तों की रक्षा करके, सब को वासस्थान प्रदान कर, आप सब के सम्यक् आश्रय होंगे ॥६२॥ इस प्रकार इन्द्रावतार का वर्णन कर स्वपरिकरगण के अवतरण अति-रहस्य होने से देव गण के साथ ही उन सब को सूचित करते हैं,

कुर्वन्ति मामकीं भक्तिं शृणु ब्रह्मन् समाहितः ॥६३॥

श्रीशचीदेवी श्रीयशोदा। श्रीहाड़ाइ पण्डितः श्रीनित्यानन्दप्रभोः पिता
श्रीवसुदेवः। श्रीपद्मावती श्रीदेवकी। अथ सखीगणः—श्रीलक्ष्मी
श्रीरुक्मिणी। श्रीविष्णुप्रिया श्रीसत्यभामा। श्रीदामोदरः–श्रीललिता
श्रीराय रामानन्दः श्रीविशाखा। श्रीशिवानन्द सेनः श्रीसुचित्रा
श्रीरूपगोस्वामी श्रीरूपमञ्जरी। श्रीसनातन गोस्वामी श्रीलवङ्ग-
मञ्जरी। श्रीगोविन्दानन्द श्रीइन्दुलेखा। श्रीगोविन्दघोषः श्रीरङ्ग-
देवी। श्रीरघुनाथदास गोस्वामी श्रीरतिमञ्जरी। श्रीरघुनाथभट्ट
गोस्वामी श्रीगुणमञ्जरी। श्रीलोकनाथठाकुरः श्रीमञ्जुलाली।
श्रीगदाधरदासः चन्द्रकान्तिः पूर्णानन्दा च। श्रीनरहरिठाकुरः मधुमती
अथ प्रियसख्यः—श्रीआचार्य्यरत्नः श्रीरत्नरेखा। श्रीरत्नगर्भठाकुरः
श्रीरतिकला। श्रीचन्द्रशेखराचार्य्यः श्रीसुभद्रा सखी। श्रीदामोदर

अन्यान्य देवगण,—जो जो मेरा भक्त है, मेरी सेवा निरत, एवं मत्
परायण हैं वे भी मेरी भक्ति का प्रदर्शन करेंगे। सुतरां कलि से
पृथिवी का भय नहीं रहेगा। हे ब्रह्मन्! सम्प्रति जो कुछ कहता
हूँ, इस का श्रवण एकाग्र चित्त से करो, निज परिकर के पक्ष में देव-
गण शब्द से क्रीड़ारत गोपगोपीगण को एवं तद्गान स्मरणरत
प्रह्लादादि भक्त गण को जानना होगा। अतएव जो सब मेरा भक्त
मदनुरागी, अतएव मत् परायण हैं, वे सब ही अवतीर्ण होंगे। श्री-
जगन्नाथ मिश्र—श्रीनन्द, श्रीशचीदेवी—श्रीयशोदा, श्रीहाड़ाइ पण्डित—
श्रीनित्यानन्द प्रभु के पिता,–श्रीवसुदेव। श्रीपद्मावती—श्रीदेवकी।
अथ सखीगण— श्रीलक्ष्मी-श्रीरुक्मिणी, श्रीविष्णुप्रिया—श्रीसत्यभामा
श्रीदामोदर—श्रीललिता। श्रीराय रामानन्द—श्रीविशाखा। श्री-
शिवानन्द सेन-सुचित्रा श्रीरूप गोस्वामी—श्रीरूप मञ्जरी। श्री-
सनातन गोस्वामी—श्रीलवङ्गमञ्जरी। श्रीगोविन्दानन्द श्रीइन्दुलेखा,
श्रीगोविन्द घोष-श्रीरङ्ग देवी। श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी-श्रीगुण-
मञ्जरी। श्रीलोकनाथ ठाकुर-श्रीमञ्जुलाली। श्रीगदाधर दास-

पण्डितः श्रीधनिष्ठा। श्रीकृष्णदासः श्रीकलहंसी। श्रीकृष्णानन्दठाकुरः
श्रीकलापिनी। श्रीआचार्य्यचन्द्रः श्रीरत्नप्रभा। श्रीनारायणठाकुरः
श्रीसुमुखी। एतावष्टौ एकयौथिकाः। श्रीमाधवाचार्य्यः माधवी।
श्रीनीलाम्बर चक्रवर्त्ती श्रीमालती। श्रीरामपण्डितः श्रीचन्द्ररेखा।
श्रीवासुदेव दत्तः श्रीकुञ्जरी। श्रीनन्दनाचार्य्यः श्रीहरिणी। श्री-
शङ्करठाकुरः नीला। श्रीसुदर्शनठाकुरः श्रीसुवली। श्रीसुबुद्धिमिश्रः
श्रीशुभानना। इति द्वितीययौथिकाः। श्रीमान्पण्डितः श्रीरसालिका। श्री-
जगन्नाथदासः श्रीतिलकिनी। श्रीजगदीशठाकुरः श्रीसौरशेनी। श्रीराय
मुकुन्दः श्रीकमला। श्रीपुरन्दराचार्य्यः श्रीनागरी। श्रीसदाशिवकविराजः
श्रीनागवेली। श्रीकुमुदकविराजः श्रीकामनपरी। श्रीजगन्नाथपण्डितः श्री-
सुगन्धिका। इति तृतीययौथिकाः। श्रीमकरध्वजठाकुरः श्रीकुरङ्गाक्षी। श्रीद्विज
रघुनाथः सुचरिता। श्रीमधु पण्डितः श्रीमण्डली। श्रीविष्णुदासः श्रीमणी
कुण्डली। श्रीपुरन्दरमिश्रः श्रीचन्द्रिका। श्रीगोविन्दाचार्य्यः श्रीचन्द्रतिलका

चन्द्रकान्ति-पूर्णानन्दा। श्रीनरहरि ठाकुर—श्रीमधुमती। अथ
प्रियसख्य-श्रीआचार्यरत्न-श्रीरत्न रेखा। श्रीरत्नगर्भ ठाकुर-श्रीरति-
कला। श्रीचन्द्रशेखराचार्य-श्रीसुभद्रासखी। श्रीदामोदर पण्डित-
श्रीधनिष्ठा। श्रीकृष्ण दास-श्रीकलहंसी। श्रीकृष्णानन्द ठाकुर-
श्रीकलापिनी। श्रीआचार्यचन्द्र-श्रीरत्न प्रभा। श्रीनारायण ठाकुर
श्रीसुमुखी। एतावष्टौ-एक यौथिकाः। श्रीमाधवाचार्य-माधवी, श्री-
नीलाम्बर चक्रवर्त्ती-श्रीमालती। श्रीराम पण्डित-श्रीचन्द्ररेखा।
श्रीवासुदेव दत्त-श्रीकुञ्जरी। श्रीनन्दनाचार्य-श्रीहरिणी। श्रीशङ्कर
ठाकुर-श्रीनीला। श्रीसुदर्शन ठाकुर-श्रीसुवली। श्रीसुबुद्धि मिश्र-
श्रीशुभानना। इति द्वितीय यौथिकाः। श्रीमान् पण्डित—श्रीरसालिका
श्रीजगन्नाथ दास-श्रीतिलकिनी। श्रीजगदीश ठाकुर-श्रीशोरसेनी।
श्रीराय मुकुन्द—श्रीकमला। श्रीपुरन्दराचार्य-श्रीनागरी। श्रीसदा-
शिव कविराज-श्रीनागवेली। श्रीकुमुदकविराज-श्रीकामनपरी।
श्रीजगन्नाथ पण्डित-श्रीसुगन्धिका, इति तृतीय यौथिकाः।
श्रीमकरध्वज ठाकुर-श्रीकुरङ्गाक्षी। श्रीद्विज रघुनाथ—

श्रीपरमानन्द गुप्तः कुन्दलाक्षी । बलराम दासः श्रीसुमन्दिरा । इति चतुर्थ यौथिकाः । श्रीकाशीमिश्रः श्रीकलकण्ठी । श्रीश्रीधरपण्डितः श्रीकामलतिका । श्रीकविचन्द्रठाकुरः श्रीइन्दिरा । श्रीहिरण्यगर्भठाकुरः श्रीकन्दर्पमञ्जरी । श्रीजगदानन्दसेनः श्रीकामलता । श्रीपीताम्बर द्विजः श्रीप्रेममञ्जरी । श्रीनिधिठाकुरः श्रीमधुरी । इति पञ्चमयौथिक्यः ॥ श्रीराघवपण्डितः श्रीकावेरी । श्रीगोपीनाथः श्रीचारुकवरी । श्रीआचार्य्य वनमाली श्रीसुकेशिनी । श्री-कंसारिसेनः श्रीमञ्जुकेशी । श्रीजीवपण्डितः हारहीरा । श्रीमुकुन्ददेव कविराजः महाहीरा । कनिष्ठश्रीहरिदासः श्रीहारकण्ठी । श्रीकविचन्द्रः श्री-मनोहरा । इति षष्ठयौथिक्यः । श्रीवल्लभसेनः श्रीमञ्जुमेधा । श्रीविद्यानिधि वाचस्पतिः श्रीसुमधुरा । श्रीगोविन्दठाकुरः श्रीसुमध्या । श्रीकविकर्णपूरः श्रीमधुरसा । श्रीश्रीनाथठाकुरः तनुमध्या । श्रीआचार्य्य माधवः श्रीमधुमदा । श्रीप्रवोधानन्द सरस्वती श्रीगुणचूड़ा । इति सप्तमयौथिक्यः । श्रीपरमानन्दः श्रीतुङ्गभद्रा । श्रीवल्लभः श्रीरसतुङ्गा श्रीजगदीशपण्डितः श्रीरङ्गराजी । श्रीवनमाली दासः श्रीसुमङ्गला । श्रीशेखरपण्डितः श्रीचित्ररेखा । श्रीश्रीनाथ-मिश्रः श्रीविचित्राङ्गी । श्रीलक्ष्मणाचार्य्यः श्रीमोदनी । श्रीपुरुषोत्तमपण्डित श्रीमदालसा । इत्यष्टमयौथिक्यः ॥ अथ गोपावताराः । श्रीअभिराम-ठाकुरः श्रीदामा । श्रीगौरीदास पण्डितः सुवलः । श्रीधनञ्जयपण्डितः वसुदामा । श्रीसुन्दरानन्दः सुदामा । श्रीकमलाकरपिपिलायी महावलः । श्रीउद्धारण दत्तः श्रीसुवाहुः । श्रीपुरुषोत्तमः स्तोककृष्णः । काशीश्वर पण्डितः किङ्किणिः । श्रीमहेशपण्डितः भद्रसेनः । श्रीवलराम ओझा अर्ज्जुनः । श्रीवक्रेश्वरपण्डितः कोकिलः । श्रीनरहरिः मधुमङ्गलः । इति गोपालाः । अथ भक्तावताराः- श्रीपरमानन्दपुरी उद्धवः । श्रीमुरारिचैतन्यः प्रह्लादः । श्रीपुण्डरीकाक्षः वाल्मीकिः । श्रीमुरारिगुप्तः हनूमान् । श्रीपुरन्दर पण्डितः अङ्गदः । श्री-गोविन्दानन्दः सुग्रीवः । इत्यादि पूर्वभक्ताः । अथ देवाः—श्रीभास्करठाकुरः श्रीविश्वकर्मा । श्रीरघुनन्दनः कन्दर्पः । इत्यादि देवाः । अथ शक्त्यवताराः-

---

सुचरिता । श्रीमधु पण्डित-श्रीमण्डली । श्रीविष्णु दास-श्रीमणी कुण्डली । श्रीपुरन्दर मिश्र-श्रीचन्द्रिका । श्रीगोविन्दाचार्य-श्रीचन्द्रतिलका । श्रीपरमानन्द गुप्त-श्रीकुन्दलाक्षी । श्रीबलराम दास-श्री सुमन्दिरा । इति चतुर्थ यौथिकाः ।

श्रीकाशीमिश्र-श्रीकलकण्ठी । श्रीश्रीधर पण्डित-श्रीकाम लतिका । श्रीकविचन्द्र ठाकुर-श्रीइन्दिरा । श्रीहिरण्यगर्भ ठाकुर-श्रीकन्दर्पमञ्जरी । श्रीजगदानन्द सेन श्रीकामलता । श्रीपीताम्बर द्विज–श्रीप्रेम मञ्जरी । श्रीनिधिठाकुर-श्रीमधुरी । इति **पञ्चम यौथिक्य.** । श्रीराघव पण्डित-श्रीकावेरी । श्रीगोपीनाथ-श्रीचारु कवरी । श्रीआचार्य वनमाली–श्रीसुकेशिनी । श्रीकंसारि सेन–श्रीमञ्जु केशी । श्रीजीवपण्डित-श्रीहारहीरा । श्रीमुकुन्ददेवकविराज श्रीमहाहीरा । कनिष्ठ श्रीहरिदास–श्रीहारकण्ठी । श्रीकविचन्द्र-श्रीमनोहरा ॥ इति षष्ठ यौथिक्यः ॥ श्रीवल्लभ सेन-श्रीमञ्जु मेधा । श्रीविद्यानिधि वाचस्पति-श्रीसुमधुरा । श्रीगोविन्द ठाकुर श्रीसुमध्या । श्रीकवि कर्णपूर–श्रीमधुरसा । श्रीश्रीनाथठाकुर–तनुमध्या । श्रीआचार्य माधव-श्रीमधुमदा । श्रीप्रवोधानन्दसरस्वती श्रीगुणचूड़ा, **इति सप्तम यौथिक्यः** । श्रीपरमानन्द-श्रीतुङ्गभद्रा । श्रीबल्लभ-श्रीरसतुङ्गा श्रीजगदीश पण्डित-श्रीरङ्गराजी । श्रीबनमाली दास-श्रीसुमङ्गला । श्रीशेखर पण्डित-श्रीचित्ररेखा ।

श्रीश्रीनाथमिश्र-श्रीविचित्राङ्गी । श्रीलक्ष्मणाचार्य-श्रीमोदिनी । श्रीपुरुषोत्तम पण्डित–श्रीमदालसा । इत्यष्टमयौथिकाः **अथ गोपावताराः** । श्रीअभिराम ठाकुर-श्रीदामा । श्रीगौरिदास पण्डित सुवलः श्रीधनञ्जय पण्डित-वसुदामा । श्रीसुन्दरानन्द सुदामा । श्रीकमलाकर पिपिलायी–महावलः । श्रीउद्धारण दत्त-श्रीसुवाहुः । श्रीपुरुषोत्तम—स्तोककृष्णः । श्रीकाशीश्वरपण्डित-किङ्किणिः । श्रीमहेशपण्डित-श्रीभद्रसेन । श्रीबलराम ओझा-अर्जुन । श्रीवक्रेश्वर पण्डित-कोकिलः । श्रीनरहरि-मधुमङ्गलः । **इति गोपालाः** ।

अथ भक्तावताराः

श्रीपरमानन्द पुरी-उद्धवः । श्रीमुरारि चैतन्य-प्रह्लादः । पुण्डरी काक्ष-वाल्मीकि । श्रीमुरारिगुप्त-हनूमान् । श्रीपुरन्दर पण्डित-अङ्गदः । श्रीगोविन्दानन्द-सुग्रीवः । इत्यादि पूर्वभक्ताः । **अथदेवाः**—श्री-

सर्वे समागमिष्यामः स्वस्थानं पुनरच्युतं ।
प्रकाशं मम देवाद्याः भक्ताः कृष्णपरायणाः ॥६४॥
इदं यः शृणुयान्नित्यं भक्तितः परिकीर्त्तयेत् ।

श्रीसीताठाकुराणी श्रीअद्वैताचार्य्य-भार्य्या श्रीआद्याशक्तिः । श्रीजगदानन्द पण्डितः श्रीसरस्वती—इत्याद्याः शक्तयः ॥६३॥

एवमाविर्भावलीलामुक्त्वा पुनः स्वपदारोहणलीलामाह—सर्वे इति। वयं पुनः स्वस्थानं समागमिष्यामः इत्यन्वयः। अत्र वहुवचनं स्वपरिकराभिप्रायेण। देवाद्याश्च ये भक्ताः कृष्णपरायणा स्तेपि मम स्वस्थानमागमिष्यन्ति। स्थानं कथंभूतम्—अच्युतं पुनरावृत्तिरहितं प्रकाशं रजस्तमोहीनत्वात् प्रकाशात्मकं। तदुक्तं—'न यत्र माया किमुतापरे हरे रनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः'। यद् गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम' इति च। तत्र पुनरयं विभागः—ये त्वधिकारिण स्ते स्वाधिकार-समाप्तौ सत्यामागमिष्यन्ति, श्रीमता भगवद्व्यासेन यावदधिकारं स्थितिराधिकारिकाणामित्यत्राधिकार-समाप्ति-पर्य्यन्तं अवस्थितिस्वीकारात्। अन्ये त्वारब्धकर्म-प्रतिबाधरहिता अविलम्बेनेति ॥६४॥

एतच्छ्रवण-कीर्त्तनमात्रफलं श्रीभगवान् स्वमुखेनैवाह—इदं य इति। इदं कलितारकावतार-प्रसङ्गं यः पुरुषः उपलक्षणमेतत् स्त्र्यादेः, नित्यं प्रत्यहं

भास्कर ठाकुर-श्रीविश्वकर्मा। श्रीरघुनन्दन-कन्दर्प। इत्यादि देवाः। अथ शक्त्यवताराः—श्रीसीता ठाकुराणी-श्रीअद्वैताचार्यभार्य्या-श्रीआद्याशक्ति। श्रीजगदानन्द पण्डित-श्रीसरस्वती। इत्याद्याः शक्तयः ॥३३॥ अथावतरणलीला को कहकर—स्वधाम-आरोहण लीला का वर्णन करते हैं। पुनर्वार हम सब निज धाम में आगमन करेंगे। देवादि-एवं कृष्ण परायण भक्त गण भी मेरे धाम में आ जायेंगे। यह धाम अच्युत है, अर्थात् पुनरावृत्ति रहित है, एवं रजस्तम हीन होने से प्रकाशात्मक है ॥६४॥ इस प्रवन्ध श्रवण कीर्त्तन का फल वर्णन श्रीभगवान् निजमुख से ही करते हैं। जो व्यक्ति यह कलि तारकअवतार प्रसङ्ग का कीर्त्तन प्रत्यह श्रद्धानुरागपूर्वक

कोटि-जन्मार्जितं पापं तत्क्षणात्तस्य नश्यति ॥६५॥

श्रीगौतम उवाच—

ततो देवगणाः सर्वे ब्रह्मा लोक-पितामहः ।
प्रणम्य देवदेवेशं गन्तारः स्वपुरं यथा ॥६६॥*

भक्तितः श्रद्धानुरागपूर्वकं कीर्त्तयेत्, कीर्त्तनसामर्थ्याभावे शृणुयाद्वा, तस्य कोटिजन्मार्जितं पापं कोटिशब्दोऽसंख्यात-परं, तत्क्षणादुच्चारण-श्रवण-समकाल एव नश्यति; पापमिति जातावेकवचनं ॥६५॥

अधुना श्रीगौतमः कलितरण-प्रसङ्गमुपसंहरति—तत इति। ततो भगवदादेशानन्तरं लोकपितामहो ब्रह्मा सर्वदेवगणश्च देवदेवेशं श्रीनारायणं प्रणम्य स्वपुरं गन्तारः स्वस्वपुरं गमिष्यन्ति। इति श्रीशतानन्दगौतमसंवादात् पृथिव्यादिप्रार्थनाया ब्रह्मभगवत्संवादस्य च भविष्यत्ता सूचिता। तस्मान्मध्ये यत्र क्वचिद् भूतादि-निर्द्देशोऽपि वस्तुतो भविष्यदर्थः ॥६६॥

श्रीराधारमणाननाब्जमधुपा गोपालसख्याभिधा
गोस्वामीति सुविश्रुता तदधराद् गौराङ्गचन्द्रेरिता।
श्रीमद्राजसुचेतरामतनुजा श्रीचन्द्रभागाभिधा
याहं विष्णुसखी शुभां कृतवती व्याख्यां सदानन्ददां ॥१॥
श्रीहरिं राधिकाकृष्णं गौराङ्गं श्रीमहाप्रभुम्।
स्वगुरून् वैष्णवान् सर्वान् वन्दे गौराङ्गसंश्रितान् ॥२॥

इति श्रीभगवद्राधारमणचरण शरण-श्रीमद् गोपालगोस्वामि-
प्रेरित-श्रीविष्णुसख्यापन्न-श्रीरामनारायण-विरचित-
वायुपुराणे शेषकाण्ड-चतुर्द्दशध्याय-व्याख्या
श्रीगौराङ्गचन्द्रोदयप्रभा वैष्णव-प्रीतिदा संपूर्णा ॥

करेगा, अथवा कीर्त्तन में असमर्थ होने से श्रवण करेगा, उस के असंख्यात जन्म के पाप समूह का नाश उच्चारण एवं श्रवण के सम काल में ही होगा ॥६५॥ सम्प्रति श्रीगौतम कलि तारण प्रसङ्ग का उपसंहार करते हैं, श्रीभगवान से आदेश प्राप्त कर लोक पितामह ब्रह्मा एवं देवगण श्रीनारायण को प्रणाम कर निज निज धाम को

इति श्रीवायुपुराणे पारमहंस्यां संहितायां वैयासिक्यां
शेषकाण्डे गौराङ्गचन्द्रोदयो नाम चतुर्द्दशोऽध्यायः ।

—**—

* श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् *

——**——

* श्रीश्रीजीवगोस्वामिपादकृता *
अनर्पितचरीं चिरादित्यादि
श्लोकस्यटीका ।

ॐ नमः श्रीकृष्णचैतन्याय ॥

अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम् :

अत्यन्तागतिकगतिदानाय निजप्रेमरत्नरक्षणयत्नोद्गतस्वकार्पण्यदोष-दूरीकरणाय तद्दाने तदास्वादनमिति तत्त्वप्रकाशनाय प्रेमसीममहाभावस्वरूप

चले जायेंगे । ६६॥

इति श्रीगौराङ्गचन्द्रोदय का तात्पर्यानुवादसमाप्त ।

गदाधरं प्रणम्याथ गौराङ्गप्रियपार्षदं ।
पूरिता विमलाभाषा हरिदासेन धीमता ॥

—**—

प्रणिपत्य पदद्वन्द्वं श्रीगौराङ्गहरेः प्रभोः ।
अनर्पितचरीभाषां वितनोमि यथामति ॥

हरिः पुरटसुन्दरद्युतिकदम्बसन्दीपितः
सदा हृदय-कन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः ॥ इति ।

श्रीराधिकातत्त्वज्ञापनाय तत्प्रेममहिमतत्त्व-तत्तदास्वाद्यस्वमधुरिम-तत्तच्चेतो-मात्रानुभूतस्वमाधुरीसङ्कुलन-सौख्यास्वादाय च अविशेष विशेषभक्तवर्गवासना-विषय-प्रेमाम्बुधिपीयूषकरणक-तदभिषेचनाय तद्द्वारा जगदभिव्यापनाय श्री-श्रीराधादास्यमात्रलभ्यानन्यलभ्यव्रज-सुमधुरप्रेमप्रकाशनाय तस्याः सर्व्व-वरीयस्त्व-प्रकाशनाय च प्रेमसागरावलम्बननवधा-भजनक्रमरूपे श्रीलनवद्वीपे श्रीमन्नन्दनन्दनः श्रीकृष्णचन्द्रो रसिकशेखरः स्वप्रेयसी-वरभावकान्तिसम्वलितः परमकरुणामयोऽवतीर्ण इति । चन्द्रग्रहणसमये हरेकृष्णेति नाम संग्राहयन्नेव चन्द्रग्रहणप्रकारः । यतो हरति स्वभावकान्तिविलासैः श्रीकृष्णस्य चित्तमिह

जिस की गति किसी भी समय किसी भी प्रकार से नहीं हुई है, उन सब को गति दान करने के निमित्त अर्थात् सम्यक् प्रकार से उन सब का उद्धार हेतु (२) द्वापर युग में स्वीय प्रेमरत्न की रक्षा के लिए अतिशय आग्रह निबन्धन-प्रेमदान कार्य में अपनी कृपणता रूप दोष का प्रकाश होता था, उसको हटाने के लिए '३' उक्त प्रेम रत्न का दान करने से ही उक्त प्रेम रत्न का सम्पूर्ण आस्वादन उत्तम रूप से सम्भव है, इस तत्त्व का प्रकाशन के लिए (४) प्रेम की परा-काष्ठा, महाभाव स्वरूपिणी श्रीराधिका का तत्त्व ज्ञापन निमित्त (५) उक्त श्रीराधा की प्रेममहिमा किस प्रकार है? उक्त प्रेम के द्वारा श्रीराधा का आस्वाद्य श्रीकृष्ण का निज माधुर्य्य किस प्रकार है? एवं एकमात्र श्रीराधा के हृदय ही जिस श्रीकृष्ण माधुरी का अनुभव करता है, उस निज माधुरी सम्भोग से किस जातीय सुख होता है? उस का आस्वादन करने के लिए-(६) अविशेष--'अर्थात् साधकादि सकल मानव,' एवं विशेष भक्तगण, (नित्यसिद्ध, अन्यान्य अवतार के पार्षद प्रभृति) जिस प्रेम प्राप्ति की कामना करते रहते हैं, उस प्रेम सागर की सुधा के द्वारा उन सब को अभिषिक्त करने के लिए (७) उक्त प्रेम के द्वारा जगत् को निमज्जित करने के मानस से

पुनः वर्णदेहादिकं हृत्वा स्वस्वभावं तं करोति या सा राधा इत्यर्थः। तथा कर्षति गुणै स्तदीयानां चित्तमिह पुनः सर्वाग्रगाश्रीराधाया वर्णभावादिकमिति कृष्ण इत्यर्थः। नाम-व्युत्पत्तिसीमा तत्रैव दर्शितः ॥

तत्र दातुः स्वभावोऽयं मिष्टद्रव्यभक्षणसमये अन्येभ्यो न दत्त्वा स्वबन्धुभ्यो न विभज्य स्वयमेव नाश्नाति। अत आपामरेभ्योऽपि निरुपमप्रेम दत्त्वा सर्व्वधाम-सर्व्वावतारकपरिकरानेकश्रीकृत्य प्रेममहोत्सवं करोतीति तत्रत्यान् एत्य विशेषाभिज्ञः श्रीमान् गोस्वामी प्रभु र्नाटकादौ नान्दीरूपेण जगदाशीर्व्यञ्जनया निरूपयति – अनर्पितमिति। श्रीशचीनन्दनो हरि र्वो युष्माकं हृदयकन्दरे स्फुरतु। यथा सिंहप्रतापेन करिमदोऽपगच्छति तथा अन्योदये युष्माकं विषयादिमदमत्तकरिरूपं मनः शान्तं भावीति ध्वनिः। स यथा संघातको, नायं तथा, किन्तु शोधक एव।

किं कस्तु मवतीर्ण इत्यत आह—पूर्व्वनिरुपितां निजभक्तिसम्पत्ति तथा

(८) श्रीराधा दास्य को छोड़कर अन्य किसी भी उपायों से व्रज के सुमधुर प्रेम का लाभ नहीं हो सकता है, उसका प्रकाश करने के निमित्त (९) एवं उक्त श्रीराधा का सर्वश्रेष्ठत्व का प्रतिपादन करने के अभिप्राय से—प्रेम सागर का अवलम्बन अथवा आश्रय स्वरूपा नव विधा भक्ति का क्रम (परिपाटी) प्रकटन स्थल—अतुलनीय सर्व शोभा समृद्धि मण्डित **श्रीधामनवद्वीपमें**-श्रीमन्नन्दनन्दन रसिक शेखर परम करुणामय श्रीकृष्ण चन्द्र,—स्वीय प्रेयसीवरा श्रीराधा के भाव एवं कान्ति ग्रहण कर अवतीर्ण हुए हैं। चन्द्रग्रहण के समय में जगज्जीव को **"हरेकृष्ण"** प्रभृति नाम सम्यक् रूप से ग्रहण कराये थे, इस लिए सूचित होता है कि—आपने चन्द्रमुखी श्रीराधा का ही ग्रहण किया था। इस चन्द्रमुखी का ग्रहण दो प्रकार से प्रतिपन्न हो सकता है:—(१)चन्द्रमुखी के द्वारा श्रीकृष्ण का ग्रहण! (२) श्रीकृष्ण के द्वारा चन्द्र मुखी का ग्रहण। इसका तात्पर्य यह है कि जिन्हों ने स्वीय भाव, कान्ति, (लावण्यादि–स्वाभिप्रायादि) एवं विलास प्रभृति के द्वारा पहले श्रीकृष्ण के चित्त हरण करने पर भी पुनर्वार वर्ण, देहादि पर्यन्त हरण करके नागरेन्द्र को स्वकीय स्वभाव

उन्नतोज्ज्वलरसां कलौ सर्व्वसाधनहीनेभ्योऽपि दीनेभ्यो दातुं। तथा तदर्थं पुरटसुन्दरद्युतिरिति श्रीराधासाम्यमेव। तत्रातोऽनन्यत्वज्ञापनाय च तदीयरूपभावाविष्करणं निगूढ़प्रेम्नो बहिष्करणेनान्तर्निगूढ़कनकरुचेरपि बहिःप्रकाशः स्वयमेवागतः। प्रेमसाररूपत्वात् श्रीराधाया इति पीतरुचित्वमवगम्यते; तन्निमग्नत्वात् श्रीनित्यानन्दप्रभुप्रभृतीनामपि गौरत्वमेव। तत्र प्रमाणानि तावल्लक्ष्यन्ते। रसज्ञाः श्रीवृन्दावनमिति यमाहु र्बहुविदो, यमेतं गोलोकं

युक्त अर्थात् विपरीत विलास रूप नागरी भाव से विभावित किया है, वह ही 'हरा' पदवाच्य **श्रीराधा** है। तद्रूप जो स्वीय असाधारण गुण राजि के द्वारा श्रीराधा एवं तदनु गता सखी मण्डली के चित्त को आकर्षण करने पर भी पुनर्वार सम्प्रति सर्वप्रधाना श्रीमती भानुनन्दिनी के वर्णभाव प्रभृति को जिन्होंने आकर्षण किया है, वह ही **श्रीकृष्ण** हैं। सुतरां "हरेकृष्ण" नाम की व्युत्पत्ति भी परा काष्ठा रसराज महाभाव के विपरीत भाव से महामिलनात्मक **श्रीश्री-गौराङ्ग** स्वरूप में ही प्रदर्शित हुई है। "गोरा" नाम का भी सङ्केतितअर्थ यह ही है। श्रीराधाभावायित श्रीगोविन्द शब्द का गो, एवं श्रीगोविन्द भावायित श्रीराधा शब्द का 'रा' उभय के मिलन से ही गोरा होता है, गोर नाम की निरुक्ति भी इस प्रकार ही है। यथा संग्रह श्लोक में।

अकारो भगवान् विष्णुः आकारो राधिका वरा।
उकारः कामरूपोऽयं रेफस्तु दानमुच्यते ॥
गाकारो हरि नामाख्यं गोतमित्यर्थवाचकम्।
प्रेम्ना श्रीराधया कृष्णः सङ्गीतं हरिनामकम् ॥
यस्मै कस्मै प्रदातीति स गौरो गदितो बुधैः ॥

ग+आ+अ+उ+र=गौर=श्रीराधा कृष्ण, प्रेमातिशय्य वशतः मिलित होकर जिस स्वरूप से जिस किसी को श्रीहरि नामाख्य सङ्गीत प्रदान करते हैं, वह ही गौर शब्द वाचक है। अपरन्तु दाता का स्वभाव यह है कि भोजन के समय मिष्ट द्रव्य, अपर को न देकर (स्वीय बन्धु वर्ग को देकर। स्वयं भोजन नहीं करते हैं। सुतरां

कतिपय जनाः प्राहुरपरे। सितद्वीपश्चान्ये परमिह परव्योम जगदु, र्नवद्वीपः सोऽयं जगति परमाश्चर्य्यमहिमा॥ कस्यचित्—विशुद्धाद्वैतैकप्रणय-रसपीयूष-जलधौ, घनीभूते द्वीपे समुदयति वृन्दावनमहो। मिथः प्रेमोद्घूर्णाद्रसिक-मिथुनाक्रीड़मनिशं, तदेवाध्यासीनः प्रविशति पदे क्वापि मधुरे। इत्यत्र

दाता शिरोमणि-श्रीगौराङ्ग आपामर सर्व साधारण को निज निरुपम प्रेम को वितरण कर सकल धाम के,—सर्व अवतार के, सर्वविध परिकर गण को एकत्र करके प्रेम महोत्सव किए थे, उस प्रेममहोत्सव में समागत श्रीगौरगण रूप में आविर्भूत विशेषाभिज्ञ अर्थात् प्रत्यक्ष द्रष्टा श्रीपाद रूप गोस्वामी प्रभु निज रचित विदग्ध माधव नाटक के नान्दीश्लोक में जगत् के प्रति आशीर्वाद प्रदान करने के छल से इस 'अनर्पितचरी' श्लोक की अवतारणा किए हैं। श्रीशचीनन्दन हरि तुम सब के हृदय कन्दरा में प्रकाशित हो, हरि शब्द से सिंह का भी बोध होता है, जिस प्रकार सिंह के प्रताप से हस्ती की मत्तता दूरीभूत होती है, तद्रूप उन के उदय से भी तुम्हारे विषयादि मद से मत्त मन हस्ती शान्त हो, यह ही ध्वनि है। सिंह हस्ती को विनष्ट करता है, किन्तु गौर हरि, मत्त मन को विनष्ट न करके ही शोधन करते हैं। यह ही विशेष है। अवतार का हेतु निर्देश करते हैं-ब्रह्मा के कल्प में किसी भी युग में किसी भी काल में आपने निज भक्ति सम्पत्ति का दान नहीं किया है। उसका दान करने के लिए ही यह अवतार है, केवल निज भक्ति सम्पत्ति ही नहीं, किन्तु उन्नत उज्ज्वल रसगर्भा भक्ति सम्पत्ति का दान करना ही अभिप्रेत है। पात्रापात्र विचार की सम्भावना दान कार्य में होती है, उस का निरसन करने के लिए कहते हैं—इस घोर कलियुग में किसी भी साधन का अनुष्ठान सुचारुरूप से नहीं हो सकता है। इस प्रकार कलियुग में सर्व प्रकार साधन भजन विहीन दीन हीन जनगण को भी शृङ्गार रसोज्ज्वला स्वीय प्रेम भक्ति का दान अविचार से करने के लिए ही यह श्रीगौरावतार है। अविचार से प्रेम दानार्थ ही उनकी गौर कान्ति है, अर्थात् पुरट सुन्दर, परम उज्ज्वल सुवर्ण से

द्वीपाख्यप्रकाशनाय श्रीनवद्वीप इति नाम। एतेन श्रीवृन्दावनरूपप्रकाश-प्रेमघूर्णनप्रकारादिकमपि अधुनैव प्रकाशितमिति ज्ञेयम्॥

भी सुन्दर है। इस पद से यह सूचित होता है कि प्रेमदान के लिए आपने श्रीराधा की समता को प्राप्त किया है, एवं श्रीराधा भी श्रीगौराङ्ग के साथ निज अभेदत्व—अनन्यत्व को प्रति पादन करने के लिए ही आपने श्रीराधा के वर्ण भाव को आविष्कार (अङ्गीकार) किया है। जो प्रेम—उनके अन्तर के अन्तरतम स्थल में निगूढ़ रूप से था, उस को बाहर प्रकट करने से अन्तरस्थ स्वर्ण कान्ति भी स्वयं ही बाहर प्रकट हो गई है। श्रीराधा प्रेमसार रूपा हैं, एवं उस प्रेम का वर्ण भी पीत होने से आप का वर्ण पीत ही हुआ है। इस पीत रुचि सम्पन्न श्रीगौराङ्ग में निमग्न चित्त श्रीनित्यानन्द श्रीगदाधर प्रभु प्रभृति के वर्ण भी गौरवर्ण ही दृष्ट होता है।

सम्प्रति नवद्वीपावतरण के सम्बन्ध में प्रमाण का प्रदर्शन करते हैं,—रसज्ञ बहुदर्शी मनीषिगण जिस को वृन्दावन कहते हैं, अपर कोई कोई व्यक्ति जिस को गोलोक कहते हैं, कोई कोई व्यक्ति जिसे श्वेतद्वीप कहते हैं, एवं अन्यान्य व्यक्ति जिस को परव्योम कहते हैं, उस परम आश्चर्य मण्डित धाम ही इस जगत् में नवद्वीप रूप में विराजित है। श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती चरण कहते है—अहो! विशुद्ध-(ऐश्वर्य ज्ञानशून्य अन्याभिलाषादि शून्य) अद्वैत (अनन्य साधारण) एवं मुख्य प्रियतामय रसामृत समुद्र का एक घनीभूत द्वीप में यह वृन्दावन उदित हैं। परस्पर के प्रेम की उद्घूर्णा (बहु विध वैचित्री) युक्त रसिक युगल के उस क्रीड़ास्थल में दिवानिशि अध्यासीन (वासपरायण) व्यक्ति किसी एक अनिर्वचनीय मधुर पद में (विषयमें) प्रवेश लाभ करता है। श्लोक के द्वीप से नवद्वीप का नाम प्रकाशित हुआ है। इस से विदित होता है कि—इस वर्त्तमान कलियुग में ही श्रीवृन्दावन का स्वरूप एवं अनन्त प्रकाश का एवं तत्रस्थ राधाकृष्ण की प्रेमोद्घूर्णादि प्रकाशित है॥१॥

(२)

यद्वा अत्यन्तागतिकगतिदानाय निजप्रेमरत्नरक्षणयत्नोद्गतस्यकार्पण्य-दोषापवादात् तद्दाने सदास्वादनमिति तत्त्वप्रकाशनाय तत्परीपाकावधिव्रज-वधूशिरोमणि---श्रीवृषभानुनन्दिनी—-स्वमाधुरीधुरीणतामावानन्तरान्तर्गतरसा स्वादाय च अशेषविशेषभक्तवर्गवासनाविषयप्रेमामृतेनाभिषेचनाय तद्द्वारा जगदभिव्यापनाय च प्रेमसागरावलम्बननवधाभक्तिरूपश्रीनवद्वीपे श्रीव्रजराज-कुमारः स्वप्रेयसीवरस्वभावकान्तिसन्दीपितः श्रीकृष्णचन्द्रोऽवततार; यदा तां चन्द्रमुखीमाकलय्यैव चन्द्र इति तद्ग्रहणसमये विश्वलोकमुखेन श्रीकृष्णेति नामावलीं ग्राहयन्नेव, विलक्षण-शिरोमणेरेषा वैदग्धीति। यतो हरे इत्यस्य हरति स्वभावकान्तिभ्यां श्रीकृष्णस्य चित्तमिति पुनरत्रवर्णभावादिकमिति व्युत्पत्त्या श्रीराधे इत्यर्थत्वात्। अत स्तदनुगतरूपः श्रीरूपो मत्प्रभु र्जन्मादि-लीलां सप्रयोजनिकामेकेन पद्यनैवाहु-अनर्पितचरीमिति।

श्रीशचीनन्दनो हरि र्वो युष्माकं हृदयकन्दरे करुणया स्फुरतु इत्यन्वयः ननु शचीनन्दनावतारस्तु दशावतारादौ न श्रूयते। कदा वावतीर्णः, पूर्णो-

(२)

अथवा (१) अत्यन्त गतिहीन को आश्रय प्रदान के निमित्त २) निज प्रेमरत्न की रक्षामें जागरूक होनेसे कार्पण्य दोषरूप अपवाद को अवगत होकर प्रेमदान से ही प्रेम का आस्वादन होता है, इस तत्त्व को प्रकट करने के लिए (३) उस प्रेम परिपाक की अवधि (चरमसीमा) महाभावरूपा गोपीशिरोमणि श्रीवृषभानु नन्दिनी के समान तदीय प्रणय, अपनी माधुरी पराकाष्ठा, एवं निरवच्छिन्न तदन्तर्गत (हृद्गत सौख्य) रस आस्वादन के अभिप्राय से (४) सर्वथा ही भक्तवर्ग की वासनाके विषयीभूत जो जो प्रेमामृत है, उस के द्वारा उन सब को अभिषिक्त करने के लिए एवं (५) आनुषङ्गिक रूप से जगत् को उक्त प्रेमामृत से व्याप्त करने के लिए प्रेमसागर का अवलम्बन (आश्रय) रूप जो नवधाभक्ति रूप श्रीनवद्वीप हैं। उस में श्रीव्रजराज कुमार श्रीकृष्णचन्द्र निज प्रेयसी के अत्युत्कृष्ट भाव, कान्ति के द्वारा सम्यक् रूप से उज्ज्वल होकर अवतीर्ण हुए हैं।

ऽंशो वा कथम्वा, केन वा, किम्वर्णो वा, लीला वा केत्यत आह—कलौ अवतीर्ण इति। कलौ वैवस्वतमन्वन्तरीयाष्टाविंशतिचतुर्युगीयचतुःसहस्र-सप्तशतवर्षमितकलियुगांशे चतुर्द्दशशतसप्तसंख्ये शाके फाल्गुनी–पौर्णमास्यां पूर्व्वफल्गुनीनक्षत्रे इति सर्व्वथा परिपूर्णरूपेण अवतीर्ण इति स्वयमेव प्रायस्व प्रयोजनायावतीर्णः प्रकटो नतु ब्रह्मणा प्रार्थितो नवा दैत्य-विनाशाय इति। "कृष्णवर्णं त्विषाकृष्ण" मिति श्रीभागवतात्। पौर्णमास्यां फाल्गुनीऋक्ष-योगतः। भविष्ये गौररूपेण शचीगर्भे पुरन्दरादिति वायव्यात्। सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्ग इति महाभारतात्। निःस्वाध्यायवषट्कारे स्वधास्वाहावि-वर्जिते। ततः प्राविरसौ विप्रः क्वचिल्लोके भविष्यतीति विष्णुपुराणात्। हिरण्यवर्णं ब्रह्मयोनिमिति श्रुतेश्च पूर्णोऽवतारीति नावतारगणनायां गणितः। यदा श्रीकृष्णोऽवतरति तदैवायमवतरतीति नियमात् स एवायमिति न पृथगु-

चन्द्र ग्रहण के समय श्रीकृष्णचन्द्र (श्रीगौराङ्गरूप में) अवतार ग्रहण किए हैं चतुर चूड़ामणि का यह चातुर्य्य है कि चन्द्र ग्रहण के समय सकल लोकों को चन्द्रमुखी श्रीराधा का ग्रहण के उपलक्ष्य में ही मानो श्रीकृष्ण प्रभृति नाम समूह का उच्चारण करवाये हैं। कारण–हरे' इस नाम की व्युत्पत्ति से ज्ञात होता है कि–स्वभाव एवं कान्ति के द्वारा जिन्होंने श्रीकृष्ण चित्त का हरण किया है, सम्प्रति वर्ण भावादि का संहरण किया है, आप "हरे" शब्द वाच्य अर्थात् हरे-श्रीराधे हैं। सुतरां श्रीराधा कृष्ण परस्पर स्वभावाढ्य होकर अवतीर्ण होने पर मेरे प्रभु श्रीरूप गोस्वामी चरण, उक्त श्रीराधा कृष्ण के एकीभूत होकर जन्म ग्रहणादि लीला का प्रयोजन को उल्लेख कर यावतीय तथ्य की वर्णना एक ही पद्य में किए हैं—**अनर्पितचरी इत्यादि**॥

सम्प्रति श्लोक के प्रत्येक पद की व्याख्या करते हैं—श्रीशचीनन्दन हरि,-तुम सब के हृदय कन्दरा में कृपया स्फुरित हो। यहाँपर प्रति पक्ष की जिज्ञासा है–आच्छा! (१) शचीनन्दन के अवतार की कथा दशावतारादि में लिखित नहीं है (२) कब अवतीर्ण हुये? (३) आप पूर्ण हैं? अथवा अंश? (४) किस प्रकार से (५) किस की

पादानम् । ननु यदि श्रीनन्दनन्दनोऽयं, तस्य तु श्रीवृन्दावनलीलायाः परं सौख्यं नास्तीति । तदेव माथुरविप्रलम्भादिकमुद्भाव्य गाढ़ावेशेनाधुनापि समृद्धिमत्सम्भोगेन मादनभावेनात्मकान्तया तया कान्तिमत्या श्रीवृन्दावने निजरूपविकारै र्ललितादि-सखीवर्गै स्तामेव लीलां करोतीति । किं कर्त्तु मत्रागतस्तत्राह--स्वभक्तिश्रियं समर्पयितुम् । सम्पद स्तावत्त्रिविधाः—रूप्यस्वर्णादि-मुद्रात्मिका इन्द्रनीलमण्यादिरूपा श्चिन्तामणिरूपाश्च साधनभावप्रेमभेदेनेति चरमकक्षा-प्राप्ता या एव स्वयमात्मारामेण विना तद्दानाभावात् । तथाच--दुर्ल्लभालोकयो र्यूनोः पारतन्त्र्याद्वियुक्तयोः । सम्भोगस्यातिरेकोऽयं कीर्त्त्यते स समृद्धिमानिति । नितान्तपारतन्त्र्यगमनञ्च ऐश्वर्य्यं विना न सम्भवतीति

प्रेरणा से ? (६) किस वर्ण में अवतीर्ण हुए हैं ? (७) उनकी लीला भी क्या है ? उत्तर में कहते हैं—(२) कलिकाल में अवतीर्ण हुए हैं। वैवस्वत मन्वन्तरीय अष्टाविंश चतुर्युग में ४७०० वर्ष परिमित कलियुगांश में, १४०७ शकाब्दा की फाल्गुनी पौर्णमासी तिथि में पूर्व फल्गुनी नक्षत्र में आप आविर्भूत हुए। (३) सर्वथा परिपूर्ण स्वरूप में ही श्रीगौराङ्ग देव का अवतार है। (४) स्वयं ही प्रायश: निज प्रयोजन साधन के निमित्त ही प्रकट हुए थे। (५) ब्रह्मादि देव गण की प्रार्थना से अवतीर्ण नहीं हुए। किम्वा दैत्य विनाश करना भी उनका उद्देश्य नहीं था (६) उनके वर्ण का विवरण श्रीमद्भागवत के कृष्ण वर्णं त्विषाऽकृष्णं" श्लोक से विदित होता है। अर्थात् गौर वर्ण हैं। वायु पुराण में उक्त है—" फाल्गुनी पूर्णिमा, पूर्वफल्गुनी नक्षत्र में मिश्रपुरन्दर के गृह में शची देवी से गौर रूप में अवतीर्ण होंगे' महाभारत में उक्त है—स्वर्ण कान्ति, हेमवत् स्पृहणीयाङ्ग एवं महापुरुष लक्षण युक्त इत्यादि'। विष्णुपुराण में लिखित है—जब स्वाध्याय, (वेदाध्ययन) अथवा वषट्कार (देवोद्देश्य में यज्ञादि) का अनुष्ठान नहीं होता है, जब पितृगण के उद्देश्य से तर्पणादि अथवा स्वाहादि (मन्त्रादि) का निषेध होता है, उस समय में (काल विशेष में) पृथिवी में विप्र रूप में श्रीहरि आविर्भूत होंगे। इत्यादि। श्रुति में वर्णित है-आप स्वर्णवर्ण एवं

तस्या अपि अनपेक्षत्वात् नितान्तात्मारामत्वञ्च ऐश्वर्य्यं विना नेति । सर्व्वभावोद्गमोल्लासी मादनोऽयं परात्परः । योग एव भवेदेष विचित्रः कोऽपि मादनः इति । नितान्तयोगोऽपि नैश्वर्य्यं विनेति । अत्रैवात्मनि तया समृद्धिमत्सम्भोगेन मादनेन च रमते । अतएव पात्रापात्र-विचारणं न कुरुते, महानन्दसीमास्थः प्रेमोन्मत्तो जगदपि मादयतीति । नचेदमनुचितमेव यत्पात्रापात्रविचाराभाव इति वाच्यम् । विश्वजयानन्तरं महाराजाधिराजगमनागमने तत्परिकरैरानन्देन स्वस्वहस्त द्वयेनापि धनानि पार्श्वद्वये विकीर्य्यैव गम्यते इति व्यवहारात् न

ब्राह्मण कुलोत्पन्न-अथवा वेद का प्रवर्त्तक हैं। (१) आप पूर्णावतार हैं, अत: अवतार की गणनामें गृहीत नहीं हुए हैं, जिस द्वापर युग के अन्तिम भाग में श्रीकृष्ण अवतीर्ण होते हैं, उस द्वापर के अव्यवहित कलि में ही आप अवतीर्ण होते हैं, इस प्रकार नियम के कारण आप की पृथक् उक्ति नहीं हुई है।

प्रतिपक्ष—यदि आप श्रीनन्दनन्दन ही हैं, तब तो सुनने में आता है कि-उनका परमसुख, श्रीवृन्दावन लीला को छोड़कर कुत्रापि नहीं होता है ! उस परम सुख के उद्देश्य से ही माथुर विप्रलम्भ इत्यादि का उद्भावन कर गाढ़ आवेश में एतावत् काल समृद्धिमान् सम्भोग में मादन भावमें स्वीय कान्ता कान्तिमती श्रीराधा के साथ श्रीवृन्दावन में स्वकीय व्यूहरूपा ललितादि सखीवर्ग के साथ उक्त लीला का आस्वादन ही तो करते हैं ? तब क्यों नवद्वीप में आगमन हुआ ? ॥

उत्तर—निज भक्ति सम्पत्ति समर्पण के उद्देश्य से ही यह अवतार है। सम्पत्ति-रौप्य, स्वर्णादि मुद्रा, इन्द्रनीलमणि प्रभृति एवं चिन्तामणि आदि त्रिविध है। उस को क्रमश: साधन भक्ति, भावभक्ति, प्रेमभक्ति रूप में निर्देश किया गया है, जो भक्ति चरम काष्ठा प्राप्त, अर्थात् उन्नत उज्ज्वल रसाढ्य है, उसका दान, स्वयं आत्माराम व्यतीत नहीं होता है, और भी पारतन्त्र्य हेतु नायक नायिका के वियोग से उभय का परस्पर दर्शनादि भी दुर्घट होने पर उक्त स्थल में (घटना क्रम से मिलन में) जो सम्भोगातिशय्य

ग्लानिकरमिदं तस्यापि तु महैश्वर्य्यप्रकाशकमिति, अस्यापि महाकृपालुत्व प्रकाशकमेव, यन्नित्यानन्देन तन्महाधन-प्रेमवितरणेन पुनर्हरणमिति । नन्वहो किमुच्यते भवता, प्रह्लादाम्वरीष-हनुमद्विभीषण-पाण्डवादिभ्यः-प्रेमदानादस्य तद्दानं नाधुनिकं, युगे युग एव दृश्यते इत्यत आह—अनर्पितचरीमिति । पूर्व्व मनर्पिता, तत्र तत्र तत्तद्गुरुकृपया, तदनु तेषां निष्ठया तैं र्बलेनैव नीतत्वात् किं तस्य दातृत्वम् ? राजा बलेन महाकृपणस्य धनानि नेतुं शक्नोति तदा किन्तस्य दातृत्वम् ? यदि शत्रुमित्रोदासीनेभ्यो हिताहितानुसन्धानं बिना जगाइ माधाइ प्रभृतिवत् सर्व्वत्रैव दातुं शक्यते, तदा दानं शस्यते, अन्यथा किन्तेनेति भावः ।

संघटित होता है, उस को समृद्धिमान् सम्भोग कहते हैं। इस लक्षण के अनुसार देखने में आता है, कि उभय की पारतन्त्र शून्यता ऐक्य व्यतीत सम्यक् रूप से नहीं हो सकती है। पुनर्वार सम्यक् प्रकार से आत्माराम होने के लिए भी आप का ऐक्य आवश्यक है। कारण-उस आत्माराम की यदि किसी प्रकार से भी महाभाव स्वरूपा की अपेक्षा नहीं होती है, तव ही आत्मारामत्व सिद्ध हो सकेगा, अन्यथा आत्मारामत्व नहीं रहेगा। और एक वात यह है—रत्यादि महा भाव पर्यन्त-भाव समूह का उद्गम वशतः उल्लासशील प्रेम को मादन कहा जाता है। यह भाव मोहन प्रभृति भाव से भी अत्युत्कृष्ट है, एवं सम्भोग में ही इस अनिर्वचनीय विचित्र मादनाख्य भाव का उदय होता है। इस प्रमाण से स्थिर होता है कि–नितान्त योग अर्थात् अवच्छिन्न निर्वाध मिलन भी ऐक्यव्यतीत सङ्घट्यमान नहीं है, सुतरां श्रीकृष्ण, गौराङ्ग स्वरूप में ही श्रीराधा के साथ समृद्धि-मान् सम्भोगाढ्य मादन के विलास से रमण करते हैं, इस लिए आप पात्रापात्र विचार न कर उन्नततम उज्ज्वल रस का दान किए हैं। देखने भी आता है—महानन्द की चरम काष्ठा प्राप्त व्यक्ति प्रेमोन्मत्त होकर जगत् को उन्मादित करता है। इस कार्य में पात्रापात्र विचार नहीं हुआ है, तज्जन्य यह कार्य अनुचित है, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है, देखो, महाराज, विश्व जयकर आगमन रत होने पर राज

ननु पूतना लोकवालघ्नीत्यादौ तथा दर्शनमपि अतएवाह उन्नतोज्ज्वल-रसामिति । उन्नतः श्रीगोपीभावेन परमोत्कर्षकक्षां प्राप्त उज्ज्वलो मधुरो रसो यस्यामिति, सतु गोपनेन सम्पुटे स्थापितोऽस्ति, मुक्तिं ददाति कर्हिचित् स्म न भक्तियोगमिति न्यायेनास्य रसस्य तु तत्रातिगोप्यत्वमिति भावः । नन्वहो किमानन्दः किमानन्दः ! तदायं कथं पूर्व्वं नावतरदित्यत आह—चिरात् करुणयेति । अयं नवद्वीपनाथः सदैवेदमपेक्ष्य स्थितः—स्वच्छा महासाधका बहवो भवन्ति कस्यापि यदीत्थं भाग्यं जायते तदा तदवलम्ब्यैव जगतीदं वितरिष्यामीति । तत्र कस्यापीदृशं भाग्यं न जातं तदा करुणाप्रेरित एव

कर्मचारिगण दोनों हाथों से आनन्द के साथ दोनों ओर धनराशि को विकीर्ण कर गमन करते हैं। यह व्यवहार तो लोक प्रसिद्ध ही है, यह तो उनके लिए ग्लानिकर नहीं हैं। प्रत्युत उन के महा ऐश्वर्य का ही प्रकाशक है। उस प्रकार श्रीगौराङ्ग देव भी पात्रापात्र का विचार न कर प्रेम सम्पत्ति का दान किए हैं, इस में उनकी महा-दयालुता उद्घोषित ही हुई है। सुतरां आप भी नित्यानन्द के द्वारा उक्त उन्नततम उज्ज्वल रसगर्भा महाधन स्वरूपा प्रेमभक्ति वितरण किए हैं, किन्तु उस का हरण (सङ्कोच) नहीं किए हैं।

प्रतिपक्ष—कहो ! आप क्या कर रहे हैं ? प्रह्लाद, अम्वरीष, हनुमान, विभीषण, पाण्डव प्रभृति को भी तो आपने प्रेम दान किया है, सुतरां श्रीकृष्ण के लिए यह दान नवीन कुछ नहीं है आधुनिक भी नहीं है, किन्तु युग युग में इस का दृष्टान्त ही मिलता है !

उत्तर—यह प्रेमदान एक अनर्पितचरी रूप ही है। पूर्व में अनर्पित क्यों है, उस को कहता हुँ। पूर्वोक्त स्थल समूह में तात् कालीन नारदादि भक्त की कृपा थी। निष्ठा से भी आप सवों ने निज सामर्थ्य से ही प्रेम प्राप्ति की है। अतः इस कार्य में आप दाता कैसे वन सकेंगे ? राजा,—बल पूर्वक महाकृपण के धन समूह ग्रहण कर सकते हैं, तव क्या उक्त महाकृपण को दाता कहेंगे ? तात् पर्य यह है कि–यदि शत्रु, मित्र, उदासीन व्यक्ति गण को हिताहित अनुसन्धान व्यतीत जगाइ माधाइ प्रभृति के समान सर्वत्र दे सकते

कलौ अनन्यगतिकदीनहीनजनालोचनेन प्रादुर्बभूवेति चिरकालानन्तरमिति भावः। नन्वद्वैत-हुङ्कारहेतुत्वमस्य, कुतः करुणया ? तथाच—'अद्वैतप्रकटीकृत' इत्यादि प्रमाणेन गङ्गायां तुलसीपत्रं दत्त्वा पाषण्डजन-वृद्धि–वैष्णवजन सन्तापेन भगवत्प्रत्यासत्तिमपश्यता हुँकारं कुर्व्वताद्वैताचार्य्य--गोस्वामिना परम सदाशिवेन मुख्यानीतोऽयमिति। सत्यं, तथापि भजनेन पश्यति, ज्ञानेन जानाति, तपसानुभवति, प्रेम्ना वशीकरोति, किं पुनर्यशोदया उदूखले बद्ध इत्यादि सर्व्वत्रैव तत्करुणा मुख्यप्रयोजिका गण्यते। यथा "कृपयासीत्

हैं, तब ही तो उनका प्रेम दान की प्रशंसा होती है नतुवा दान की प्रशंसा ही क्या है ॥

प्रतिपक्ष—पुतना लोक बालघ्नी राक्षसी होकर भी (जिघांसा वृत्ति से प्रेरित होकर) श्रीकृष्ण के निकट गमन करने पर भी आपने उस को मातृगति देदी है। इस उक्ति से पता चलता है कि श्रीकृष्णने निज शत्रु को भी प्रेमदान किया है ?

उत्तर—उन्नत उज्ज्वल रसयुक्ता इत्यादि उन्नत-अर्थात् गोपी भाव से परमोत्कर्षावधि प्राप्त। उज्ज्वल–अर्थात् मधुर रस है जिस में इस प्रकार प्रेम भक्ति श्रीगौरावतार में प्रदत्त हुई है। इस जातीय मधुर रस गुप्त भाव से सम्पुट मध्य में विहित रहता है। श्रीकृष्ण प्रायशः ही मुक्ति प्रदान करते हैं। किन्तु कभी भी भक्तियोग नहीं देते हैं, इस युक्ति से विहित होता है कि-उस समय मधुर रस, अति गोपनीय रूप से था। सुतरां उसका दान का प्रसङ्ग सम्भव ही नहीं है।

प्रतिपक्ष—ठीक है,—परमानन्द ही परमानन्द ही है !! यदि तुम्हारी बात् ठीक है, तो आप पहले क्यों नहीं अवतीर्ण हुए ?

उत्तर—अनेक काल के बाद ही करुणा हेतु यह अवतार है। नवद्वीप नाथ सर्वदा ही अपेक्षा करते थे कि—स्वच्छ (विशुद्ध) महा साधक तो अनेक ही है, इन सब के मध्य में यदि किसी के महा-भाग्योदय होता है, तब उस भाग्य को अवलम्बन करके ही जगत् में प्रेम का बितरण करेंगे। पूर्वोक्त युग में एतादृश भाग्य किसी

स्वबन्धने" इत्यादि प्रमाणेन, यथाच भगवतः सर्व्वागम्यत्वमुक्त्वा पश्चात्—"येषां स एव भगवान् दययेदनन्त (२।७।४२) इत्यादिना दयामात्र–प्राप्यत्वं तस्य निर्द्धारितम्। तथाच अकाण्डे प्रकाण्डहुंकारेण प्रलयकल्पमहारुद्रस्याद्वैताचार्य्यस्य लोका विनक्ष्यन्तीति झटित्युत्थया करुणयैव भगवतः प्रादुर्भूतत्वमिति भावः। ननु भोः ! श्रीकृष्णेनापि दण्डकारण्यवासिमुनि-श्रुतिकन्या-गायत्री प्रभृतिभ्यो व्रजे गोपकन्या-रूपिणीभ्यो गोकुलचन्द्रेणापि उज्ज्वलरसप्रदानं कृतमिति श्रूयते। कृष्णादन्यः को वा लतास्वपि प्रेमदो भवतीत्यादि प्रमाणेनायोग्येभ्योऽपि तस्य प्रेमदातृत्वञ्च। सत्यं भोः; स एव व्रजराजकुमारोऽयं, तेनानेन भेदविवक्षायां किं प्रयोजनं, किन्तु अन्तःपुरे महाराजः कल्पतरुरूपेण

का नहीं हुआ है, यह देखकर, करुणा प्रेरित होकर ही कलि में दीन हीन अनन्योपाय जनगण की अवस्था पर्यालोचन कर प्रादुर्भूत हुए हैं। सुतरां मैं कहता हूँ कि–आप चिर काल के बाद ही आये हैं।

प्रतिपक्ष—सुनने में आता है कि—श्रीअद्वैत के हुङ्कार से ही आप अवतीर्ण हुए हैं, अतः श्रीअद्वैत हुङ्कार ही अवतार के प्रति कारण हैं ? तब करुणा हेतु अवतार क्यों कहते हैं ? कारण–अद्वैतः प्रकटीकृतः नरहरि प्रेष्ठः " इत्यादि प्रमाण से विदित होता है कि--पाषण्डिजन की वृद्धि तथा वैष्णवों का सन्ताप को देखकर सदाशिव स्वरूप श्रीअद्वैताचार्य गङ्गाजल में तुलसी अर्पण, एवं हुँ हुँकारध्वनि से ही आप पृथिवी में अवतीर्ण हुए थे।

उत्तर—सत्य ही है ! तथापि भजन से उनका दर्शन होता है, ज्ञान से जानाजाता है, तप से अनुभव होता है, प्रेम से श्रीहरि वशीभूत होते हैं, अधिक और क्या कहूँ ? यशोदा के द्वारा उदूखल में बद्ध हुए थे, इत्यादि स्थल में सर्वत्र उनकी करुणा ही मुख्य प्रयोजक है। जिस प्रकार आप माता का परिश्रम को देखकर एवं आर्त्ति को देखकर कृपावशतः स्वयं ही बन्धन को स्वीकार किए थे। अन्यत्र भी वर्णित है—अनन्त भगवान् जिस के प्रति कृपा करते हैं, उस के लिए ही देवमाया उत्तीर्ण होना सम्भव होता है। इत्यादि वचन से उनकी प्राप्ति के लिए उनकी दया ही उपाय है। तात्पर्य यह है

सर्व्वस्वमपि ददातीत्युक्तेऽपि न दातृत्वं, यदि दीनहीन–पतितादिभ्योऽदेयमपि दीयते, महादातृत्वं तदैव, अपिच कृपणपक्षे ह्युत्तमः श्लोकवाद (१०।४७।१५) इति स्मरणात् । ननु ईदृशप्रेमरत्नानां स्थापनागाराणि भुवि कति प्रकाशितानि येभ्यो नीत्वान्यदापि सुकृतिनः प्रेमधनिनो भवन्ति ? सत्यं, अष्टादशसहस्र संख्यकश्लोकाः श्रीमद्भागवतीयाः सन्ति यच्छ्रवणमात्रेणापि प्रेमा जायते यस्यां वै श्रूयमानायामित्यादि (१।७।७) वचनात् स्वयमेव तद्रूपतया तया ददातीति न चित्रम् । ननु कोवाध्यक्षः को वा कोषद्वाररक्षको, द्वारि कपाटादिकं किं नास्ति, योऽध्यक्षः श्रीनित्यानन्दः सतु हस्तद्वयेन ददाति, तस्मादपि विचार–रहितः प्रेम कादम्बिनी–मत्तत्वात् । यस्तु द्वाररक्षकः श्रीसनातनः, सतु पूर्व्वस्थितमपि कवाट–कीलकादिकं वैष्णवतोषण्यादिरूपेणोन्मुच्याह्वयति–आगच्छ भ्रातरेतस्मिन् प्रेमाम्बुधिनिमज्जने । यत्सौख्यमनुभूयेह तुच्छं ब्रह्मपदादिकमिति ज्ञात्वैव प्रभुणापि तस्मै तस्मै तत्तदधिकारो दत्तः । नाप्रेमदोऽपि प्रेमद इत्येतद्धर्म्मस्य प्रोज्झितकैतवत्वात् । अतएव त्रिकपटी वर्ज्जितः यथा धनकपटी,

---

कि हठात् प्रलय कर्त्ता महारुद्र अद्वैताचार्य के प्रकाण्ड हुङ्कार से जगत् समूह विनष्ट होंगे, यह जानकर तत्क्षयात् उद्‌बुद्ध करुणा ही भगवान् को प्रादुर्भूत कराती है ।

प्रतिपक्ष—अच्छा,--सुनागया है कि दण्डकारण्यवासि मुनि गण एवं श्रुति कन्या गायत्री प्रभृति भी व्रज में गोपकन्यारूप में जन्म ग्रहण करने पर श्री गोकुलचन्द्र कृष्ण भी उनसव को उज्ज्वल रस प्रदान किये थे। और कृष्ण को छोड़कर कोई भी ऐसा है, जो लता को भी प्रेमप्रदान करने में समर्थ है ? इत्यादि प्रमाण से विदित होता है कि आपने अयोग्य स्थल में भी प्रेम वितरण किया है । तब फिर गौरावतार में प्रेम प्रदान का वैशिष्ट्य कहाँ है ?

उत्तर—हाँ सत्य ही है। वह व्रजेन्द्रनन्दन ही तो यह गौर हैं, इन दोनों में भेद मानने का प्रयोजन ही क्या है ? महाराजा, अन्तः पुर में कल्पतरु होकर भी सर्वस्व दान करते हैं" यह कहने पर उनका दातृत्व का प्रकाश नहीं होता है, पक्षान्तर में यदि दीन हीन पतित प्रभृति को अदेय वस्तु का दान करते हैं, तब ही उनका महा-

वलकपटी, प्रेमकपटी चेति । यस्तु श्रुतश्रीभागवतधर्म्मो गुरुकृष्णवैष्णवसेवने श्रीभागवतप्रीत्यै तद्व्ययपराङ्मुखः प्रत्युत तद्विपरीत-वर्त्मणि सहस्राधिकादि व्ययनिरतोऽधिकतल्लाभाय पूर्व्वत्र शतादिदानेऽपि भीतः, स आद्यः । यस्तु सत्यामपिशक्तौ कृष्णवैष्णवकर्म्मणि जड़ः, श्रीचैतन्यसंकीर्त्तनताण्डवाद्यलसः स द्वितीयः । यस्तु प्रेम्णि अजातेऽप्युत्कण्ठारहितः, "अहं भक्त" इति साभिमानः, स तृतीयः एतेषां कापट्यत्यागेन, मुहुर्मुहु र्महत्कृपासापेक्षं प्रेम ।

नन्वयं श्रीनन्दनन्दनस्तदा सर्व्वश्रुतिपुराण–प्रसिद्ध-श्यामरूपमेवास्य स्यादत आह—पुरटद्युतिकदम्बसन्दीपितः । पुरटाज्जाम्बूनदादिसुवर्णात् सुन्दरी या द्युति स्तत्समूहेन कान्तिपुञ्जेन सन्दीपित आच्छादितच्चिक्कण–मरकतमणिकान्तिक इति भावः । अतएव हरिः त्रिजगन्मोहनः, कृष्णरूपेण पुनः कृष्णमोहिनीरूपसम्वलितत्वात् । अतोऽस्य दर्शने चिन्तन एव प्रेमोदयो, न पुनर्द्दानादानापेक्षा, हरति सर्व्वं प्रेम्नेति भावः ।

नन्वस्य लीलां भावयामि—कृपया ब्रूहीत्यत आह – स्फुरतु वः । भोः त्वमद्यापि प्रधानगिरिरेव, यतः श्रीगौराङ्गचन्द्रलीलापि ते न गोचरा । अतः

दातृत्व घोषित हो सकता है। भागवत में १०।४७।१५ श्रीकृष्ण की उत्तम श्लोकता किन्तु कृपण व्यक्ति के लिए ही सङ्गत होती है। अर्थात् जो सन्तप्त हीन हीन जन को दया करता है, वह उत्तम श्लोक पदवाच्य होता है। श्रीकृष्ण में उक्त लक्षण न होने से श्रीकृष्ण उत्तम श्लोक कहलाने योग्य नहीं है।

प्रश्न—एतादृश प्रेमरत्न का कितने भाण्डार पृथिवी में प्रकाशित है, जिस से अन्य समय में भी धन संग्रह कर सुकृति जन गण प्रेम धनी हो सकते हैं ?

उत्तर—हाँ, भागवत के अठारहजार श्लोक हैं, जिस के श्रवण से ही प्रेम होता है, कारण कथित है (भा: १।७।७।) भागवत श्रवण के समय ही परम पुरुष श्रीकृष्ण में भक्ति का उदय होता है। और स्वयं ही उस प्रकार सात्वत संहिता के द्वारा प्रेमदान करते हैं, यह कुछ विचित्र बात नहीं है।

प्रश्न—उस भाण्डार का अध्यक्ष कौन है ? कोष रक्षक,

सत्यपि ज्ञाने तव हृदयं शैलकन्दरमेव, तत्र कृपया प्रभुर्मे स्फुरतु सर्व्वदा, तदा तल्लीलापि प्रेममयी सर्व्वदा स्फुरिष्यतीति प्रत्यक्षीकरिष्यस्येव, किं कथनेन। कथनेऽपि ते बिलतुल्यकर्णौ किं ज्ञातुं शक्नुत इति भावः। ननु महापराधी अहं। हा श्रीचैतन्यलीलायामपि न मे रति र्जाता। कथं स मामनुग्रहीष्यतीत्यत आह – श्रीशचीनन्दनः। जगन्माता शची, तस्या बालकेषु स्नेहो वर्त्तत एव। "कुपुत्रो जायते क्वचिदपि कुमाता न भवती"ति न्यायेन मातृभक्तो गौराङ्ग स्त्वामनुग्रहीष्यत्येवेति भावः। यद्वा एवं महानुभावमतप्रसिद्धि वर्त्तते-सन्न्यासानन्तरमद्वैत गृहे शचीगौराङ्गसंवादः। यथा=शची आह—रे विश्वम्भर! विश्वरूप-शोकादि ज्ञातं। मदीयजन्मान्तरीय-पापपुञ्जः स्थित

द्वाररक्षक कौन है? उस द्वार में कपाटादि है या नहीं?

उत्तर—हाँ, सब कुछ ही है, अध्यक्ष-श्रीनित्यानन्द, आप दोनों हाथों से वितरण करते हैं, स्वयं प्रेम मदिरासेमत्त होने के कारण-श्रीगौराङ्ग से भी समधिक विचार शून्य हैं। द्वार रक्षक-श्रीसनातन हैं, पहले भाण्डार में जो भी कपाटादि थे, आपने वैष्णव तोषणी प्रभृति के द्वारा उस सब को हटाकर बुलाते रहते हैं, अरे भाई इस प्रेमामृत समुद्र में डुबकी लगाने के लिये आओ। इस सुख का अनुभव होने से ब्रह्मपदादि भी तुच्छ हो होगा। श्रीगौराङ्ग प्रभुतो दोनों के स्वभाव को जान कर ही अध्यक्षत्व एवं द्वाररक्षकत्व प्रदान किए हैं। प्रेमदान न कर के भी (मुक्ति दान करने पर भी कभी भी भक्ति प्रदान नहीं करते हैं) प्रेमद नाम है, इस से बोधहोता है कि-भागवत धर्म सर्वथा ही कैतव रहित है, अर्थात् कपटता शून्य है। सुतरां तीन प्रकार कपटी ही भागवत धर्म से वहिष्कृत हुए हैं। (१) धन कपटी, (२) बल कपटी, (३) प्रेम कपटी। भागवत धर्म को सुनकर भी जो जन श्रीगुरु,कृष्ण, वैष्णव सेवा के लिए श्रीभगवत् प्रीति के लिए धन व्यय नहीं करता है, पक्षान्तर में उसके विरोधी व्यवहार मार्ग में उस से अधिक लाभ की आशा से सहस्र अयुत व्यय करने में अभ्यस्त है, किन्तु उक्तस्थल में शतादि दान करने में डरते रहते हैं, वह व्यक्ति ही धन कपटी है। शक्ति होते हुये भी कृष्ण

एव कालेन फलितः। यदि भवत्पितृवन्मन्मृतिरद्यापि सहसा सम्भवति; तदैहिक-शोकसन्ताप–लोकधिक्कारलज्जादिभ्लो मुक्ता स्याममुत्र यद्भवतु। यदि जीवनं न नश्येत्तदा मया किं विषादि पातव्यं किं सुरधुनी-नीरमध्यमध्या सनीयमन्यथा विश्वम्भरजननीति सर्व्वैः श्लाघ्या स्थिताहमतीव तिरस्कृता स्यां न कोऽपि मया सम्वदिष्यति, न वा मन्नाम ग्रहीष्यति—अहो! अस्या नाम-ग्रहणेन करगतेष्टमपि नङ्क्ष्यति। अतीव दुर्भागिनीमेनामस्मात् पुरान्निःसारयेति परस्पर-प्रवदनशीलो नवद्वीपलोको भविष्यति। किमतः कार्य्यं ममेति ब्रूहि विश्वम्भर! ततः श्रीगौराङ्गेणोक्तं—

वैष्णव के कर्म में जड़ होता है, श्रीकृष्ण चैतन्य के संकीर्त्तन में ताण्डव नृत्य करने में अलस होता है-वह द्वितीय बल कपटी है। और जो व्यक्ति-प्रेम न होने पर भी उत्कण्ठा शून्य है। अथच मैं भक्त हूँ, इस प्रकार अभिमान रखता है, वह प्रेम कपटी है। कपटता परित्याग पूर्वक पुनः पुनः महत् कृपा से अभिषिक्त होने से प्रेम लाभ होता है।

प्रश्न=यदि श्रीगौराङ्ग—श्रीनन्दनन्दन हैं, तब इनका वर्ण भी 'श्याम' होगा, श्रुति पुराणादि में वर्णित प्रसिद्ध श्रीकृष्ण का वर्ण श्याम ही है, तब गौर वर्ण क्यों कहा गया है?

उत्तर,—पुरट द्युति कदम्ब सन्दीपित हैं, जाम्बुनद स्वर्ण से भी सुन्दर जो कान्ति माला हैं, उस के द्वारा सम्यक् उज्ज्वलीकृत अर्थात् उनकी चिक्कण मरकत मणि की कान्ति आच्छादित हुई है। अतएव उनका नाम है-हरि, अर्थात् त्रिजगत् मोहन हैं, कारण, कृष्ण रूप ही जगन्मोहन है, उस में भी कृष्ण मोहिनी श्रीराधा का रूप भी संयुक्त है, अतएव इनका दर्शन, चिन्तन से ही प्रेमोदय होता है। दानादान की अपेक्षा भी नहीं है। हरि नाम की व्युत्पत्ति भी यह है, जो प्रेम द्वारा सब के मन को हरण करते हैं।

प्रश्न—मैं उनकी लीला भावना करने की इच्छा करता हूँ। कृपया उनकी लीला कथा का श्रवण कराईये॥

उत्तर—तुम्हारे चित्त में वह स्फुरित हो, ओहे। तुमतो अद्या-

मात र्मा वद मा वदेदृशमहो कष्टातिकष्टं वच
स्तथ्यं तेनिगदामि यामि भवनात्तिष्ठामि यद्यन्यतः ।
त्वं माता मम सर्वदेश-वसतौ देवादि-जन्मस्वपि
त्वत्पुत्रोऽहमहं सदा त्रिजगतामर्च्च्यं स्त्वमर्च्या मम ।। इति
सर्वसाधनहीनोऽपि महापाप-सहस्रकृत् ।
शचीसुत इति प्रोक्तः सगणं मां वशं नयेत् ।।
स ज्ञानी सर्वशास्त्रज्ञः स प्रेमी मत्प्रियोऽधिकः ।
शचीनन्दन इत्येव येन हर्षेण गीयते ।।

श्रीगौराङ्ग की लीला को नहीं जाना है। अतएव तुम्हे महापर्वत कहना अत्युक्ति नहीं होगी। ज्ञान होते हुये भी तुम्हारे हृदय पर्वत कन्दर ही है,-उस कन्दरा में कृपालु प्रभु सर्वदा स्फुरित हो, प्रभु के प्रकाश से उनकी प्रेममयी लीलावली की स्फुर्त्ति सर्वदा होगी, स्वयं तुम भी उस का प्रत्यक्ष करोगे। अतएव लीलाकथा कहने की आवश्यकता नहीं और कहने से ही क्या तुम्हारे गर्त्त तुल्य काण उस का ग्रहण करेगा ?

प्रतिपक्ष—मैं महापराधी हूँ। हाय ! मेरीरति श्रीचैतन्य लीला में नहीं हुई, श्रीगौराङ्ग मुझे कृपा कैसे करेंगे ?

उत्तर—उन का नाम श्रीशचीनन्दन हैं। जगत् की माता श्रीशचीदेवी हैं, सुतरां सन्तान गण के प्रति उनका स्नेह स्वाभाविक है, कुपुत्र अनेक होतेहैं, किन्तु कुमाता कभी नहीं होती" इस सिद्धान्त के अनुसार मातृभक्त गौराङ्ग तुम्हें अवश्य ही कृपा करेंगे। अथवा इस विषय में महानुभाव सम्मत प्रसिद्धि को अवलम्बन कर में उत्तर कर रहा हूँ--सन्न्यास के वाद अद्वैत के घर में श्रीशची एवं गौराङ्ग का संवाद इस प्रकार है-शची बोली-विश्वम्भर ! विश्वरूप के विरह को तुम जानते ही हो, मेरा जन्मान्तरीण पाप पुञ्ज फलीभूत हुआ, यदि मेरी मृत्यु होती तो ऐहिक सन्ताप लोककृत धिक्कार लज्जादि से में मुक्त हो जाती, "विश्वम्भर की मा हूँ" इस प्रकार प्रशंसनीया होकर भी सब के तिरस्कार का भाजन बनूँगी !! कोई

मां क्रीणाति जनो धन्यः परिक्रीणाति मद्गणं ।
शचीनन्दन इत्येवं योऽभिधत्ते कथञ्चन ।।
तस्य विद्या तस्य वित्तं स तीर्थ-सदृशो भवेत् ।
शचीनन्दन इत्येवं येन हर्षेण गीयते ।।
शचीं वा मां शचीपुत्रं नवद्वीपं शचीस्थलं ।
यो वदेत् सोऽवदच्छास्त्रं वेदवेदान्त-संग्रहम् ।।
जन्मजन्मनि तत्प्रीतो जातोऽहं यो वदेत् क्वचित् ।
श्रीशचीति श्रीशचीति श्रीशचीति स मे गुरुः ।।

इत्यतः श्रीशचीनाम-ग्रहणेन महापराधिनोऽपि श्रीगौराङ्गोऽतिप्रियो भवतीत्युक्तं श्रीशचीनन्दन इति। तथाच—'श्रीशचीनन्दन' इत्येवं कीर्त्तय,

मेरा नाम ग्रहण नहीं करेगा ।। यह सुनकर गौराङ्ग बोले, मा ! मा ! ऐसा मत कहो। मैं सत्य कहता हूँ। मैं घर छोड़कर जाने पर भी सवदेश में तुम मेरी माता हो रहोगी। देवादि जन्म में भी तुममेरी माता हो, मैं तुम्हारे पुत्र था। मैं त्रिभुवन के अर्चनीय हूँ, और तुम मेरी अर्चनीया हो, सकल साधन हीन होकर भी जो व्यक्ति शचीसुत कहेगा, वह व्यक्ति सपरिकर मुझ को वश में कर लेगा। जो हर्ष से--शचीनन्दन" नाम कीर्त्तन करेगा-वह ज्ञानी, सर्व शास्त्रज्ञ प्रेमी, एवं मेरा समधिक प्रिय है। जो व्यक्ति शचीनन्दन नाम का उच्चारण करता है, वह धन्य है, वह मुझ को खरीद लेता है। जो जन हर्ष से शचीनन्दन "नाम गान करता है, उनकी विद्या एवं धन सार्थक है, वह तीर्थ सदृश होता है। जो 'शची, 'शचीपुत्र' 'नवद्वीप नाम उच्चारण करता है, उस को वेदान्तादि अध्ययन का फल मिलता है, किसी समय जो व्यक्ति-श्रीशची श्रीशची श्रीशची नाम कीर्त्तन करता है, उस के प्रति मैं जन्म जन्म सन्तुष्ट रहता हूँ। अधिक क्या बलुँ। वह जन मेरा गुरु है, अतएव कहता हूँ। श्रीशची नाम ग्रहण करने से श्रीगौराङ्ग-महापराधीकाभी अतिप्रिय होते हैं, इस सिद्धान्त को लक्ष्य करके ही श्रीश्रीरूपगोस्वामिपाद उक्त श्लोक में शचीनन्दन पदका प्रयोग किए हैं, अतएव शचीनन्दननामोचारण

तेनैव कीर्त्तनेनापराध-युक्तोऽपि तस्मान्मुक्तो भविष्यसीति ।

करते रहो, अपराधी होने पर भी अपराध से मुक्त हो जाओगे ।।

श्रीजीवगोस्वामिकृत अनर्पितचरी श्लोक की भाषाटीका समाप्त ।।

हरिदासेनविप्रेण वृन्दारण्य निवासिना ।
पूरिता विमलाभाषा विनोदिनीतिविश्रुता ।।
श्रीश्रीमद् गुरवे समर्पणमस्तु ।।

——※※——

※ श्रीश्रीगौरगदाधरौ जयतः ※

श्रीचैतन्यपञ्चशतशताब्दी के
अवसरपर
श्रीगौराङ्गचन्द्रोदयः
अनुपम उपहार
श्रीचैतन्यचन्द्रामृतम्
जिसमें

※ परमरसचमत्कार माधुर्य्यसीमा श्रीराधा का—
※ प्रेम नामक अद्भुतार्थ का—
※ वृन्दाविपिन महामाधुरी में प्रवेश चातुरी का—

—※ एकमात्र आविष्कारक ※—

श्रीचैतन्यदेवकी सुविशदमहिमा वर्णित है ।

---

१२ श्रीप्रेमसम्पुट (मूल, टीका, अनुवादसह) श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्ती कृत भागवतीय रास रहस्यवर्णनात्मक हृदयग्राही ग्रन्थ — ४.००

१३ भगवद्भक्तिसार समुच्चय (सानुवाद) श्रीलोकानन्दाचार्य प्रणीत भक्तिरहस्य परिवेषक अनुपम ग्रन्थ । — ३.७५

१४ भगवद्भक्तिसार समुच्चय (सानुवाद बङ्गला) श्रीलोकानन्दाचार्य प्रणीत, भक्तिरहस्य प्रकाशक मनोहर ग्रन्थ । — ३.००

१५ व्रजरीति चिन्तामणि (मूल, टीका, अनुवाद) श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्ति ठक्कुर कृत व्रजसंस्कृति वर्णनात्मक अत्युत्कृष्ट ग्रन्थ । — ४.००

१६ श्रीगोविन्दवृन्दावनम् (सानुवाद) बृहद् गौतमीय तन्त्रान्तर्गत श्रीराधारहस्य परिवेषक सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ । — १.५०

१७ श्रीराधारस सुधानिधि (मूल बङ्गला) श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपादकृत श्रीराधा महिमा प्रतिपादक अनुपमेय ग्रन्थ । — १.७५

१८ श्रीराधारस सुधानिधि (मूल हिन्दी) — ०.६०

१९ श्रीकृष्णभक्ति रत्नप्रकाश (सानुवाद) श्रीराघव पण्डित रचित श्रीकृष्णभक्ति प्रकाशक अनुपम ग्रन्थ । — ५.००

२० हरिभक्तिसार संग्रह (सानुवाद) श्रीपुरुषोत्तमशर्म प्रणीत श्रीभागवतीय क्रमबद्ध भक्ति सिद्धान्त संग्रहात्मक ग्रन्थ । — १२.००

२१ श्रुतिस्तुति व्याख्या (अन्वय, अनुवाद) श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती कृत वेदस्तुति की व्रजलीलात्मक व्याख्या । — १४.००

२२ श्रीहरेकृष्ण महामन्त्र "अष्टोत्तरशतसंख्यक" — ०.४०

२३ धर्मसग्रह (सानुवाद) श्रीवेदव्यास कृत धर्मसंग्रह श्रीमद्भागवतीय ७म स्कन्ध के अन्तिम ११, १२, १३, १४, १५ अध्यायों का वर्णन । — ३,७५

२४ श्रीचैतन्य सूक्ति सुधाकर श्रीचैतन्यचरितामृत, तथा श्रीचैतन्यभागवतीय सूक्तियों का संग्रह । — ४.००

२५ सनत् कुमार संहिता (सानुवाद) व्रजीय रागानुगा उपासना प्रतिपादक सुप्राचीन ग्रन्थ । — २.५०